श्रीः

धन्यवादः ।

तस्मै परमात्मने परमात्मने शतशो धन्यवादाः सन्तु । मदीययाऽनुपमया घट-
नया सोनलनस्मलरममित्रपर्याजयगदनिवासिमुंशीप्रभुदयालुशर्माणो अपि केवलं
लोकोपकारिणः पुरुषाः सन्ति । यैः प्रायः शास्त्राणामवनतिं निरीक्ष्य च नामपि
शास्त्राणां स्पष्टसुगमभाषानुवादकरणे संकल्पोऽकारि । तत्र तदनुवादिनौ "साङ्ख्य-
दर्शन", "योगदर्शन" नामानौ शास्त्रग्रन्थौ पाठकानां दृष्टिगोचरतामगमताम् ।
अयं च "वैशेषिकदर्शन" नामा तृतीयो ग्रन्थोऽधुना तथा भवितुं प्रवर्तते । एतद-
तिरिक्ता "वेदान्तदर्शन" प्रभृतयो ग्रन्था अपि क्रमशः प्रसिद्धिमेष्यन्ति । एतेषां
भाषाश्रेणी त्वतीव मनोहरास्ति । कोऽप्यधीतोऽनधीतो वा मनुष्यः सकृच्छ्रवणमन-
नाभ्यामेव ग्रन्थकर्तुः पूर्णमाशयं हृदये प्रकाशन्तं पश्यति । उक्तश्रीप्रभुदयालुमहा-
शयानामेतादृशजगदुपकारकग्रन्थानां प्रकाशसाहसं चास्य मदीयस्य "श्रीवेङ्कटेश्वर"
मुद्रणालयस्याध्यक्षमकृत । आशास्महे च–विद्वज्जना एतानतिदुर्लभशास्त्रग्रन्थान्दृष्ट्वा
प्रोक्तश्रीप्रभुदयालुमहाशयानामनन्यसाधारणान्प्रयत्नान्सफलीकुर्वन्त्विति शम् ॥

विद्वज्जनप्रेमाभिलाषी–

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रणालय

मुंबई.

शुद्धिपत्रम् ।

	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
	७	कारण नहो अर्थात्	कारणनहो, अनपेक्षहो अर्थात्
[illegible]	१०	(सामान्यव विशेषकाकथन है	(सामान्यव विशेषका कथन है)
[illegible]	४	भौमोंका	मोमोंका
[illegible]	११	कोवर	कौवर
[illegible]	३	आये हुयेंएक दूसरे	आये हुयोंका एक दूसरे
[illegible]	१९	(चिन्हेंहै	(चिन्ह)है
१६	२१	मैदेवदत्त हूं ऐसा	मैदेवदत्त हूं मै यज्ञदत्तहूं ऐसा
१६	२३	दृष्ट्यात्मनि	दृष्ट आत्मनि
१७	१९	ज्ञानविषय प्रत्यक्षका विषय	ज्ञान, विषय(प्रत्यक्षका विषय)
१७	२४	व्याप्तिसे विशेषकी	व्याप्तिसे, विशेषकी
१९	२३	त्रिविध शरीर	त्रिविधं शरीर
२१	१४	अभिघातान्मुसलसंयोगः ॥५॥	अभिघातान्मुसलसंयोगाद्धस्ते कर्म ५
२१	१५	अभिघातसव मुसलके	अभिघातसे व मुसलके
२१	२५	होताहै	विशेष होताहै
२२	१३	मूचियां	सूचियां
२६	१	नोदनाभिघातात्	नोदनादभिघातात्
२८	१३	होनेमेंभी अभावसे	न होनेमें भी अभावसे
२८	१७	टसीभय	टसीमय
२९	२२	महत्त्वकी(प्रत्यक्ष होना)	महत्त्वकी उपलब्धि(प्रत्यक्ष होना)
३१	२१	एक पृथक्त्वका अभ	एक पृथक्त्वका अभाव
४९	१०	उपयोगमें	उपभोगमें
५०	१८	विषय स्पर्शका	विषय, स्पर्शका
५१	२७	उसके	उसके
५२	२५	मल्हार्वरात्रि	मल्हार्वा रात्रि
५३	२०	मल्हाका नामहै	मल्हावा नामहै
५६	२७	सह दिशाका	मह दिशाका
५९	६	अनुमान दिया जाता	अनुमान किया जाता
६०	१८	एक मात्र है	एक एक मात्रहै

पृ०	पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
६२	२	एक, पृथक्त्व	एक पृथक्त्व
६२	५	पनेपरभी	पने रहने परभी
६३	१७	आनेकी	होनेकी
६३	१८	आवश्यकताहीं	आवश्यकताही है
६६	२४	(विक्षेपणके योग्य	(विशेषणके योग्य
६७	८	)कारण रूप	(कार्य व कारणरूप
६७	१४	इससे दोपरहित	यह दोषरहित
"	२०	हेतु व कारण	हेतु वा कारण
६८	१३	व्यवहार	व्यवहार होताहै
६८	१५	भत्व व अणुत्व	महत्व व अणुत्व
६८	१९	चारौ प्रकारका अनित्य-परिमाण संख्या	चारौ प्रकारका अनित्य-परिमाण, संख्या
६९	१२	महत्ववान अणुक	महत्ववान त्र्युणुक
"	१५	त्र्युणुकके आदिमे	त्र्युणुक आदिमें
७०	२३	संयोगी ओके	संयोगियोंके
७१	१	(दोतन्तुवालेपटका कारण	(दोतन्तु वाले) पटका कारण
७१	३	वीरणसे वीरणके साथ	वीरणसे(वीरणके साथ)
७१	३	वह एकसे	वह एकसे अर्थात् एक
"	४	साथ संयोगसे	साथके संयोगसे
७३	१२	किससे दो कारणों	उससे(उसके पश्चात्) कारणों
७४	२	[illegible] हुये	न करते हुये
७४	१६ व १७	(पृथक् प्राप्त) होना	(पृथक् प्राप्त होना)
७४	२७	जिनकादो अवयवोंका	भिन दो अवयवोंका
८०	२४	अनन्तर होनेसे	अनन्त होनेसे
८१	१६	विशेष ज्ञान होनेसे	विशेष ज्ञान न होनेसे
८२	३	अचल सुरमाके	अचल आकाश व सुरमाके
८२	४	श्याम आकाश रात्रिका अंधकार	श्याम रात्रिका अंधकार
८२	२३	के उपदेश न होनेसे	केवल उपदेश न होनेसे
८३	६	(प्रलीन वाला)	(मलीन मनवाला)
८३	२८	[illegible]	[illegible]

पं०	अशुद्ध.	शुद्ध.
११	सामान्य, विशेष	सामान्य विशेष
१२	सामान्य, विशेष	सामान्य विशेष
६	यह अदृष्टहै	यह दृष्टहै
२३	शब्दादिहैंकि अन्तर्गत	शब्द आदिअनुमानहीके अन्तर्गत
१८	(न होनेका) लिंग	(न होनेका) लिंगहै
२५	अचाक्षुष प्रत्यक्ष प्रत्यक्षके समान	अचाक्षुष प्रत्यक्षके समान
२१	कहनेके अनुसारहो	कहनेके अनुसार होनेसे
२७	श्रावणग्राह्य	श्रवणग्राह्य
१३	विरुद्धि अनुमेय	विरुद्ध अनुमेय
१७	शब्द अनित्यहै	शब्द नित्यहै
६	बहुवा	बहुधा
९	प्राण व अपानके समानका	प्राणव अपानके सन्तान का
१७	अदृष्ट भाग्यलक्षण	अदृष्ट(भाग्यलक्षण)
६	सविज्ञान उसका	सम्यग्ज्ञान उसका
२६	उत्पत्ति न होनेमवर्म	उत्पत्ति न होनेमे व
१३	नाडिका(नाडीमे)बांसके पत्ताआदिमे गिरताहै	नाडिकामे(नाडीमे)बांसका पत्ता आदि गिरताहै
१	दृष्टान्त यह जैसे	दृष्टान्त यहहै जैसे
२७	आरंभक करताहै	आरंभ करताहै
१३	उत्पन्न होताहै	उत्पन्न होताहै
११	बस तरफ	सब तरफ
७	आकाश आदिकियाका	आकाश आदिमें क्रिया का
१२	यहाँ कर्म पदार्थ	कर्म पदार्थ
२६	पूर्वज्ञानके समान	पूर्वके समान प्रत्यय-ज्ञान
३	यहहै कि	कि यहहै
४	(भिन्न अर्थ है)	(भिन्न अर्थ) है
५१६	है यह प्रत्ययानुवृत्तिहै	है यह सबमें प्रत्ययानुवृत्तिहीहै
४	आश्रयविशेष होनेसे	आश्रयविशेषमे होनेसे
२	कल्पना नहीं जाती	कल्पना नहीं की जाती
१५	अर्थान्तरभिन्न पदार्थ	अर्थान्तर(भिन्न पदार्थ)

पृ०	पं	अशुद्ध	शुद्ध
११९	१	कर्मही	कर्महीं में
१३४	११	कारण का यह प्रत्यय	जिससे कार्य व कारण का यह प्र
१३५	१८	करनेवाला ज्ञान होताहै	करनेवाला ज्ञान नहीं होता
१३५	२४	कार्यके कारण रुप होतेहैं	कार्य व कारण रूप होते हैं
१३६	३	कारण यौगपद्यात्	कारणा यौगपद्यात्
१३७	९	स सतभिन्न पदार्थ	से सत भिन्न पदार्थ
१३७	१६	भूत स्मृतीसे	भूत स्मृतिसे
१३७	१८	तथा अभावमेव भाव प्रत्यक्ष होने से	तथा अभावमें भाव प्रत्यक्ष होने से
१३८	१३	तत्समवायात्कर्म गणेषु	तत्समवायात्कर्म गुणेषु
१३८	२४	इसका यह कार्य	इसका यह बकार्य
१३९	४	लिङ्ग प्रमाणं	लिङ्गं प्रमाणम्
१३९	१५	तैसे हा	तैसेही
१४०	७	विरोध ससुख	विरोधसे सुख
१४१	२०	(फलदृष्ट न होनेसे अर्था-त् प्रत्यक्ष न होनेसे	(फलदृष्ट न होनेसे अर्थात् प्रत्यक्ष न होने से)
१४१	२१	अभ्युदयके अर्थ है स्वर्ग प्राप्ति वा आत्मज्ञानउदय होनेके लिये है	अभ्युदयके अर्थ है (स्वर्ग प्राप्ति वा आत्मज्ञानउदय होनेके लिये है)
१४२	३	सूत्रोंको	सूत्रोंका
१४३	१	साथ समझना	साथ न समझना
१४४	१२	त्याग करना वा धर्मको	त्याग करना व धर्मको
१४४	२९ व ३०	तजवान	तेजवान
१४५	७	वासकरना	वा सरकना
१४६	१०	परिमण्डल व परम महत्व आदि भिन्न पदर्थ	(परिमण्डल व परम महत्व आदिसे) भिन्न पदार्थ
१४७	३	द्रव्यके आरंभ	द्रव्यके आरंभक
१४७	१५	पृथिवी सामान्य विशेषके लक्षणके	पृथिवीके सामान्य विशेष के लक्षणके

इति शुद्धिपत्रं समाप्तम् ॥

श्रीः ।

वैशेषिकदर्शनसूत्राणि ।

सानुवादानि ।

अथातोधर्मंव्याख्यास्यामः ॥ १ ॥

अर्थ-अथ (अब) इससे धर्मको वर्णन करेंगे ॥ १ ॥

यतोऽभ्युदयनिश्रेयस्सिद्धिः स धर्मः ॥ २ ॥

अर्थ-जिससे स्वर्ग व मोक्षकी सिद्धि होती है वह धर्महै ॥ २ ॥

तद्वचनादाम्नायस्यप्रामाण्यम् ॥ ३ ॥

अर्थ-उसके वचनसे वेदका प्रामाण्य है ॥ ३ ॥

धर्मविशेषप्रसूताद्द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानांसाधर्म्यवैधर्म्याभ्यांतत्वज्ञानान्निश्रेयसम् ॥४॥

अर्थ-साधर्म्य व वैधर्म्यद्वारा धर्मविशेषसे उत्पन्न द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष व समवाय पदार्थोंके तत्त्वज्ञानसे मोक्ष होता है ॥ ४ ॥

पृथिव्यापस्तेजोवायुराकाशंकालोदिगात्मामनइतिद्रव्याणि

अर्थ-पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा व मन ए द्रव्य हैं ॥ ५ ॥

रूपरसगन्धस्पर्शाःसंख्याःपरिमाणानिपृथक्त्वंसंयोगविभागौपरत्वापरत्वेबुद्धयःसुखदुःखेइच्छाद्वेषौप्रयत्नाश्चगुणाः ६

अर्थ-रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धियां, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष व प्रयत्न आदि गुण हैं ॥ ६ ॥

पृ॰	पं	अशुद्ध	शुद्ध
११९	१	कर्महीं	कर्महीं में
१३४	११	कारण का यह प्रत्यय	जिससे कार्य व कारण का यह
१३५	१८	करनेवाला ज्ञान होताहै	करनेवाला ज्ञान नहीं होता
१३५	२४	कार्यके कारण रुप होतेहैं	कार्य व कारण रूप होते हैं
१३६	३	कारण यौगपद्यात्	कारणा यौगपद्यात्
१३७	९	स सतभिन्न पदार्थ	से सत भिन्न पदार्थ
१३७	१६	भूत स्मृतीसे	भूत स्मृतिसे
१३७	१८	तथा अभावमेव भाव प्रत्यक्ष होने से	तथा अभावमें भाव प्रत्यक्ष होने से
१३८	१३	तत्समवायात्कर्म गणेषु	तत्समवायात्कर्म गुणेषु.
१३८	२४	इसका यह कार्य	इसका यह बकार्य
१३९	४	लिङ्ग प्रमाणं	लिङ्गं प्रमाणम्
१३९	१५	तैसे हा	तैसेही
१४०	७	विरोध ससुख	विरोधसे सुख
१४१	२०	(फलदृष्ट न होनेसे अर्था-त् प्रत्यक्ष न होनेसे	(फलदृष्ट न होनेसे अर्थात् प्रत्यक्ष न होने से)
१४१	२१	अभ्युदयके अर्थ है स्वर्ग प्राप्ति या आत्मज्ञानउदय होनेके लिये है	अभ्युदयके अर्थ है (स्वर्ग प्राप्ति या आत्मज्ञानउदय होनेके लिये है)
१४२	३	सूत्रोंको	सूत्रोंका
१४३	१	साथ समझना	साथ न समझना
१४४	१२	त्याग करना वा धर्मको	त्याग करना व धर्मको
१४४	२९ व ३०	तजवान	तेजवान
१४५	७	वासकरना	वा सरकना
१४६	१०	परिमण्डल व परम महत्व आदि भिन्न पदर्थ	(परिमण्डल व परम महत्व आदिसे) भिन्न पदार्थ
१४७	३	द्रव्यके आरंभ	द्रव्यके आरंभक
१४७	१५	पृथिवी सामान्य विशेषके लक्षणके	पृथिवीके सामान्य विशेष के लक्षणके

इति शुद्धिपत्रं समाप्तम् ॥

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनंप्रसारणंगमनमितिकर्माणि

अर्थ-उत्क्षेपण (ऊपरको चेष्टाकरना), अवक्षेपण (नीचेको चेष्टाकरना), आकुंचन (सिकोडना), प्रसारण (पसारना), ग(चलना) अर्थात् जाना आना लाना आदि कर्म हैं ॥ ७ ॥

सदनित्यंद्रव्यवत्कार्यंकारणंसामान्यविशेषवदिति द्रव्यगुणकर्मणामविशेषः ॥ ८ ॥

अर्थ-विद्यमान अनित्य द्रव्यवान् (द्रव्यसम्बन्धी) कारण सामान्य व विशेषवान् (सामान्य व विशेष सम्बन्ध होना यह द्रव्य गुण व कर्मोंका अविशेष (सामान्य लक्षण) है ।

द्रव्यगुणयोःसजातीयारम्भकत्वंसाधर्म्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ-सजातीय पदार्थनका आरंभक होना द्रव्य व गु साधर्म्य है ॥ ९ ॥

द्रव्याणिद्रव्यान्तरमारभन्तेगुणाश्चगुणान्तरम् ॥ १०

अर्थ-द्रव्य अन्य द्रव्यके आरंभक (उत्पादक) होतेहैं, गुण अ गुणके आरंभक होतेहैं ॥ १० ॥

कर्मकर्मसाध्यंनविद्यते ॥ ११ ॥

अर्थ-कर्म कर्मसे साध्य नहीं होता ॥ ११ ॥

नद्रव्यंकार्यंकारणंचवधति ॥ १२ ॥

अर्थ-द्रव्यको न कार्य नाश करता है न कारण नाश करता है।

उभयथागुणाः ॥ १३ ॥

अर्थ-दोनों प्रकारसे गुण नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

कार्यविरोधिकर्म ॥ १४ ॥

अर्थ-कार्यही है नाशक जिसका ऐसा कर्महै अर्थात् कर्म अप कार्यहीसे नाशको प्राप्त होता है ॥ १४ ॥

द्रव्याणांद्रव्यंकार्यंसामान्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ–द्रव्य (कार्यद्रव्य) द्रव्योंका (कारणद्रव्योंका) स कार्य है ॥ २३ ॥

गुणवैधर्म्यान्नकर्मणांकर्म ॥ २४ ॥

अर्थ–गुणके विरुद्ध धर्म होनेसे कर्मोंका कार्य कर्म नहीं हो

द्वित्वप्रभृतयःसंख्याःपृथक्त्वसंयोगविभागाश्च ॥ २

अर्थ–दो होना आदि संख्या, पृथक्त्व, संयोग व विभ अनेक द्रव्योंके कार्य हैं ॥ २५ ॥

असमवायात्सामान्यकार्यंकर्मनविद्यते ॥ २६ ॥

अर्थ–अनेकमें सम्बन्ध होनेसे कर्म सामान्यकार्य नहीं होत

संयोगानांद्रव्यम् ॥ २७ ॥

अर्थ–संयोगोंका कार्य द्रव्य है ॥ २७ ॥

रूपाणांरूपम् ॥ २८ ॥

अर्थ–रूपोंका (रूपोंका कार्य) रूपहै ॥ २८ ॥

गुरुत्वप्रयत्नसंयोगानामुत्क्षेपणम् ॥ २९ ॥

अर्थ–गुरुत्व प्रयत्न व संयोगोंका कार्य उत्क्षेपणहै ॥ २९ ॥

संयोगविभागाश्चकर्मणाम् ॥ ३० ॥

अर्थ–संयोग, विभाग आदि कर्मोंके कार्य हैं ॥ ३० ॥

कारणसामान्येद्रव्यकर्मणांकर्माकारणमुक्तम् ॥ ३१

अर्थ–कारणसामान्यमें (सामान्यकारणवर्णनके प्रकरण द्रव्य व कर्मोंका कारण कर्म नहीं होता यह कहा गयाहै ॥ ३१

इति प्रथमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

कारणाभावात्कार्याभावः ॥ १ ॥

अर्थ–कारणके अभावसे कार्यका अभाव होताहै ॥ १ ॥

अर्थ-सामान्य व विशेषके अभावसे (न होनेसे) भी ॥ १

तथागुणेषुभावाद्गुणत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥

अर्थ-तेहीप्रकारसे गुणोंमें होनेसे गुणत्व (गुणपन) १ अर्थात् द्रव्यत्वके समान गुणत्वको कहागया समझना चाहिये॥

सामान्यविशेषाभावेनच ॥ १४ ॥

अर्थ-सामान्य व विशेषके अभावसे भी ॥ १४ ॥

कर्मसुभावात्कर्मत्वमुक्तम् ॥ १५ ॥

अर्थ-कर्मोंमें होनेसे कर्मत्व (कर्मका भाव) कहागया भावमात्रके समान कर्मत्व द्रव्यगुणकर्मोंसे भिन्न कहागया स चाहिये ॥ १५ ॥

सामान्यविशेषाभावेनच ॥ १६ ॥

अर्थ-सामान्य व विशेष न होनेसे भी ॥ १६ ॥

सदितिलिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकोभावः॥

अर्थ-है यह ज्ञान जो भावका लिङ्ग (चिह्न वा लक्षण) है इ विशेष न होनेसे व विशेष (भेद) के लिङ्ग (अनुमान) के अभा भाव एक है ॥ १७ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ।

रूपरसगन्धस्पर्शवतीपृथिवी ॥ १ ॥

अर्थ-रूप रस गंधस्पर्शवाली पृथिवी है ॥ १ ॥

रूपरसस्पर्शवत्यआपोद्रवाःस्निग्धाः ॥ २ ॥

अर्थ-रूपरसस्पर्शसहित बहनेवाला स्निग्ध (चिकना) जल है ॥

तेजोरूपस्पर्शवत् ॥ ३ ॥

-तेज रूप व स्पर्शवाला है ॥ ३ ॥

स्पर्शवान्वायुः ॥ ४ ॥

अर्थ--सामान्य व विशेषके अभावसे (न होनेसे) भी ।

तथागुणेषुभावाद्गुणत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥

अर्थ-तेहीप्रकारसे गुणोंमें होनेसे गुणत्व (गुणपन), अर्थात् द्रव्यत्वके समान गुणत्वको कहागया समझना चाहिये

सामान्यविशेषाभावेनच ॥ १४ ॥

अर्थ-सामान्य व विशेषके अभावसे भी ॥ १४ ॥

कर्मसुभावात्कर्मत्वमुक्तम् ॥ १५ ॥

अर्थ-कर्मोंमें होनेसे कर्मत्व (कर्मका भाव) कहागया भावमात्रके समान कर्मत्व द्रव्यगुणकर्मोंसे भिन्न कहागया चाहिये ॥ १५ ॥

सामान्यविशेषाभावेनच ॥ १६ ॥

अर्थ-सामान्य व विशेष न होनेसे भी ॥ १६ ॥

सदितिलिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्चैकोभावः ॥

अर्थ-है यह ज्ञान जो भावका लिङ्ग (चिह्न वा लक्षण) है विशेष न होनेसे व विशेष (भेद) के लिङ्ग (अनुमान) के अभा० भाव एक है ॥ १७ ॥

इति प्रथमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ।

रूपरसगन्धस्पर्शवतीपृथिवी ॥ १ ॥

अर्थ-रूप रस गंधस्पर्शवाली पृथिवी है ॥ १ ॥

रूपरसस्पर्शवत्यआपोद्रवाःस्निग्धाः ॥ २ ॥

अर्थ-रूपरसस्पर्शसहित बहनेवाला स्निग्ध (चिकना) जल है ॥ २

तेजोरूपस्पर्शवत् ॥ ३ ॥

तेज रूप व स्पर्शवाला है ॥ ३ ॥

स्पर्शवान्वायुः ॥ ४ ॥

स्पर्शगुणवाला वायु है ॥ ४ ॥

तआकाशेनविद्यन्ते ॥ ५ ॥
र्थ-वे आकाशमें नहीं होते ॥ ५ ॥

ान्य है ॥ ६ ॥
सीसलोहरजतसुवर्णानामग्निसंयोगाद्द्रवत्त्वमद्भिःसामान्यं
अर्थ-टीन सीस लोह चांदी सुवर्णोका अग्निके संयोगसे बहना
ऽके समान है ॥ ७ ॥
ाणीककुद्मान्प्रान्तवालधिःसास्नावानिति गोत्वेदृष्टलिङ्गम्
अर्थ-जिसके सींगहो जिसके कौहानहो अंतमें जिसके वालहों
ो पूंछवाला गलेमें जिसके कौवरहो ऐसाहोना गौहोनेमें दृष्टलिङ्ग
त्यक्षचिह्न) है ॥ ८ ॥

स्पर्शश्चवायोः ॥ ९ ॥
अर्थ-स्पर्शभी वायुका ॥ ९ ॥

नचदृष्टानांस्पर्शइत्यदृष्टलिङ्गोवायुः ॥ १० ॥
र्थ-और दृष्टपदार्थोंका लिङ्ग स्पर्श नहींहै इससे वायु अदृष्टलिङ्ग-
ाला है अर्थात् ऐसा है जिसका लिङ्ग स्पर्श अदृष्ट है ॥ १० ॥

अद्रव्यवत्त्वेनद्रव्यम् ॥ ११ ॥
अर्थ-द्रव्यवान् न होनेसे अर्थात् किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे
द्रव्य है ॥ ११ ॥

क्रियावत्त्वाद्गुणवत्त्वाच्च ॥ १२ ॥
अर्थ-क्रियावान व गुणवान होनेसे ॥ १२ ॥

अद्रव्यवत्त्वेननित्यत्वमुक्तम् ॥ १३ ॥
अर्थ-किसी द्रव्यमें आश्रित न होनेसे नित्यहोना (वायुका नित्य-
ोना) कहागया है ॥ १३ ॥

वायोर्वायुसंमूर्च्छनंनानात्वलिङ्गम् ॥ १४ ॥

अर्थ-वायुका वायुके साथ संमूर्च्छन (विरुद्ध दिशाओंसे आयेहुयों एक दूसरेके साथ धक्का लगना वा भिड़जाना) होना अनेक होनेका चिह्न वा लक्षण है ॥ १४ ॥

वायुसन्निकर्षेप्रत्यक्षाभावाद्दृष्टंलिङ्गंनविद्यते ॥ १५ ॥

अर्थ-वायुके सन्निकर्षमें प्रत्यक्षके न होनेसे दृष्टलिङ्ग नहीं है वायुका लिङ्ग दृष्ट नहीं है ॥ १५ ॥

सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ॥ १६ ॥

अर्थ-और सामान्यतो दृष्टसे (सामान्यतो दृष्टअनुमानसे होनेसे) अविशेष है (विशेषरहित है वा विशेषसे विशेषित नहीं है)

तस्मादागमिकम् ॥ १७ ॥

अर्थ-तिससे आगमिक (वेदमें प्रसिद्ध है) ॥ १७ ॥

संज्ञाकर्मत्वस्मद्विशिष्टानांलिङ्गम् ॥ १८ ॥

अर्थ-संज्ञा व कर्म हमसे विशिष्टों (विशेषगुण व सामर्थ्यवालों का लिङ्ग है ॥ १८ ॥

प्रत्यक्षप्रवृत्तत्वात्संज्ञाकर्मणः ॥ १९ ॥

अर्थ-संज्ञा व कर्मका प्रत्यक्ष प्रवृत्त किया गया होनेसे अर्थात् किसी कर्त्तासे प्रत्यक्ष प्रवृत्त किये जानेसे ॥ १९ ॥

निष्क्रमणंप्रवेशनमित्याकाशस्यलिङ्गम् ॥ २० ॥

अर्थ-निकलना व प्रवेशकरना आदि आकाशका लिङ्ग (चिह्न है)

तदलिङ्गमेकद्रव्यत्वात्कर्मणः ॥ २१ ॥

अर्थ-कर्मके एक द्रव्यमें आश्रित होनेसे वह (निकलना व पैठना आदि कर्म) लिङ्ग नहीं है ॥ २१ ॥

कारणान्तरानुक्लृप्तिवैधर्म्याच्च ॥ २२ ॥

अर्थ-अन्य कारण असमवायिकारणके लक्षण वैधर्म्यसे (विधर्म होनेसे) भी ॥ २२ ॥

संयोगादभावःकर्मणः ॥ २३ ॥

अर्थ-संयोगसे कर्मका अभाव होताहै ॥ २३ ॥

कारणगुणपूर्वकःकार्यगुणोदृष्टः ॥२४॥

अर्थ-कारणगुणपूर्वक कार्यगुण देखा गया है अर्थात् गुणका होना प्रत्यक्ष वा विदित होताहै ॥ २४ ॥

कार्यान्तराप्रादुर्भावाच्चशब्दःस्पर्शवतामगुणः ॥ २५ ॥

अर्थ-कार्यान्तर (अन्यकार्य अर्थात् एकसे अधिक कार्य) प्रकट होनेसे शब्द स्पर्शवाले पदार्थोंका गुण नहीं है ॥ २५ ॥

परत्रसमवायात्प्रत्यक्षत्वाच्चनात्मगुणोनमनोगुणः । २६

अर्थ-परमें समवाय होनेसे और प्रत्यक्ष होनेसे न आत्माका है न मनका गुण है ॥ २६ ॥

परिशेषाल्लिङ्गमाकाशस्य ॥ २७ ॥

अर्थ-परिशेषसे (बाकी रहनेसे) आकाशका लिङ्ग है ॥ २७ ॥

द्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ २८ ॥

अर्थ-द्रव्यत्व (द्रव्यहोना) नित्यत्व (नित्यहोना) वायुके मान व्याख्यात है ॥ २८ ॥

तत्वंभावेन ॥ २९ ॥

अर्थ-इसका एक होना भावके समान व्याख्यात है ॥ २९ ॥

शब्दलिङ्गाविशेषाद्विशेषलिङ्गाभावाच्च ॥ ३० ॥

अर्थ-शब्दलिंगके विशेष न होनेसे व विशेषलिंगके अभावसे ॥

तदनुविधानादेकपृथक्त्वञ्चेति ॥ ३१ ॥

अर्थ-उसके (उक्त एकत्वके) अनुविधान (सहचार वा व्याप्ति) से त्व व पृथक्त्व (भिन्नहोना) है ॥ ३१ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

पुष्पवस्त्रयोःसतिसन्निकर्षेगुणान्तरा-
प्रादुर्भावोवस्त्रेगन्धाभावलिङ्गम् ॥ १ ॥

अर्थ-पुष्प व वस्त्रके सन्निकर्षमें (संयोगविशेष होनेमें) गुणसे अर्थात् कारणगुणसे प्रादुर्भाव (उत्पत्ति) न होना गंधके अभाव होनेका लिंग है ॥ १ ॥

व्यवस्थितःपृथिव्यांगन्धः ॥ २ ॥

अर्थ-पृथिवीमें गंध व्यवस्थित (विशेषरूपसे अवस्थित स्थित) है अर्थात् पृथिवीका विशेष गुण गंध है ॥ २ ॥

एतेनोष्णताव्याख्याता ॥ ३ ॥

अर्थ-इसी प्रकारसे उष्णता व्याख्यान कीगई है यह सम चाहिये ॥ ३ ॥

तेजसउष्णता ॥ ४ ॥

अर्थ-तेजका लिंग वा लक्षण उष्णता है ॥ ४ ॥

अप्सुशीतता ॥ ५ ॥

अर्थ-जलोंमें शीतता है अर्थात् विशेष गुण शीतता है ॥ ५

अपरस्मिन्नपरंयुगपच्चिरंक्षिप्रमितिकाललिङ्गानि ॥६

अर्थ-अपरमें अपर होना, अनेकका एक साथ होना, काल वा देर होना जल्द होना ऐसे ज्ञान होना कालके लिंग हैं।

द्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ ७ ॥

अर्थ-द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुके समान व्याख्यात है यह झना चाहिये ॥ ७ ॥

तत्त्वंभावेन ॥ ८ ॥

... एक होना भावके समान व्याख्यात समझना चाहिये

[illegible] ॥

अर्थ-नित्योंमें अभावसे (न होनेसे) व अनित्योंमें भावसे
नेसे) कारणमें काल यह नाम कहा जाता है वा कहनेके योग्य है९

इतइदमितियतस्तद्दिश्यंलिङ्गम् ॥ १० ॥

अर्थ-जिससे इससे यह अर्थात् इससे यह निकट वा दूर है ऐसा
। होता है वह दिशाका लिंग है ॥ १० ॥

द्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ ११ ॥

अर्थ-द्रव्यत्व नित्यत्व वायुके समान व्याख्यात है ॥ ११ ॥

तत्वंभावेन ॥ १२ ॥

अर्थ-एक होना भावके समान है ॥ १२ ॥

कार्यविशेषेणनानात्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ-कार्यविशेषसे अनेकत्व होता है ॥ १३ ॥

आदित्यसंयोगाद्भूतपूर्वाद्भविष्यतोभूताच्चप्राची ॥१४ ॥

अर्थ-पूर्वमें हुये, होनेवाले व वर्तमान हुये सूर्यके संयोगसे पूर्व
शा मानी जाती है ॥ १४ ॥

तथादक्षिणाप्रतीचीउदीचीच ॥ १५ ॥

अर्थ-तैसे ही दक्षिण पश्चिम उत्तरभी ॥ १५ ॥

एतेनदिगन्तरालानिव्याख्यातानि ॥ १६ ॥

अर्थ-इसी प्रकारसे मध्यके दिशा व्याख्यात समझना चाहिये १६

सामान्यप्रत्यक्षाद्विशेषाप्रत्यक्षाद्विशेषस्मृतेश्चसंशयः १७

अर्थ-सामान्यके प्रत्यक्ष होनेसे विशेषके प्रत्यक्ष न होनेसे व विशे-
की स्मृतिसे संशय होता है ॥ १७ ॥

दृष्टश्चदृष्टवत् ॥ १८ ॥

अर्थ-दृष्टके समान दृष्टभी ॥ १८ ॥

यथादृष्टमयथादृष्टत्वाच्च ॥ १९ ॥

अर्थ-जैसा दृष्ट है वैसा दृष्ट न होनेसे भी ॥ १९ ॥

विद्याऽविद्यातश्चसंशयः ॥ २० ॥

अर्थ-विद्या व अविद्यासे भी संशय होताहै ॥ २० ॥

श्रोत्रग्रहणेयोऽर्थः स शब्दः ॥ २१ ॥

अर्थ-श्रोत्र (कर्ण) से जो ग्रहण किया जावे वह शब्द है

[illegible] ॥ २२ ॥

अर्थ-तुल्यजातीयोंमें व अर्थान्तरभूतोंमें (विजाती... विशेषके दोनों प्रकारसे दृष्ट (प्रत्यक्ष) होनेसे ॥ २२ ॥

एकद्रव्यत्वान्नद्रव्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ-एक द्रव्य सम्बन्धी होनेसे अर्थात् एक द्रव्यमें होनेसे द्रव्य नहीं है ॥ २३ ॥

नापिकर्मचाक्षुपत्वात् ॥ २४ ॥

अर्थ-चक्षुका विषय वा चक्षुगोचर न होनेसे कर्मभी नहीं है॥

गुणस्यसतोऽपवर्गःकर्मभिःसाधर्म्यम् ॥ २५ ॥

अर्थ-विद्यमान गुण रूपका अपवर्ग (जल्द नाश होना) प... साथ साधर्म्य है ॥ २५ ॥

सतोलिङ्गाभावात् ॥ २६ ॥

अर्थ-सत्के (विद्यमानके) लिंग (चिह्न वा लक्षण) के न हो... सत् नहीं है ॥ २६ ॥

नित्यवैधर्म्यात् ॥ २७ ॥

अर्थ-नित्यके विरुद्ध होनेसे ॥ २७ ॥

अनित्यश्चायंकारणतः ॥ २८ ॥

अर्थ-कारणमे (कारणसे उत्पन्न होनेसे) यह अनित्य है ॥ २...

नचासिद्धंविकारात् ॥ २९ ॥

...-और विकार होनेसे असिद्ध नहीं है ॥ २९ ॥

अभिव्यक्तौदोषात् ॥ ३० ॥

अर्थ-प्रकट होनेमें दोष होनेसे ॥ ३० ॥

संयोगाद्विभागाच्चशब्दाच्चशब्दनिष्पत्तिः ॥ ३१ ॥

अर्थ-संयोगसे व विभागसे व शब्दसे शब्दकी सिद्धि वा उत्पत्ति ती है ॥ ३१ ॥

लिङ्गाच्चानित्यश्शब्दः ॥ ३२ ॥

अर्थ-और लिंग होनेसे शब्द अनित्य है ॥ ३२ ॥

द्वयोस्तुप्रवृत्तेरभावात् ॥ ३३ ॥

अर्थ-परन्तु दोकी प्रवृत्तिके अभावसे ॥ ३३ ॥

प्रथमाशब्दात् ॥ ३४ ॥

अर्थ-प्रथमाशब्दसे ॥ ३४ ॥

सम्प्रतिभावाच्च ॥ ३५ ॥

अर्थ-पहिचान होनेसेभी ॥ ३५ ॥

संदिग्धासतिबहुत्वे ॥ ३६ ॥

अर्थ-बहुत होनेपरभी संदिग्ध है ॥ ३६ ॥

संख्याभावःसामान्यतः ॥ ३७ ॥

अर्थ-सामान्यसे संख्याका होना है ॥ ३७ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ २ ॥

प्रसिद्धाइन्द्रियार्थाः ॥ १ ॥

अर्थ-इन्द्रियोंके अर्थ प्रसिद्ध हैं ॥ १ ॥

इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्यहेतुः ॥२॥

अर्थ-इन्द्रियोंके अर्थोंकी प्रसिद्धि (सामान्य बोध) इंद्रियके अर्थोंसे भिन्न अर्थका हेतु (लिङ्ग) है ॥ २ ॥

विद्याऽविद्यातश्चसंशयः ॥ २० ॥

अर्थ-विद्या व अविद्यासे भी संशय होताहै ॥ २० ॥

श्रोत्रग्रहणेयोऽर्थः स शब्दः ॥ २१ ॥

अर्थ-श्रोत्र (कर्ण) से जो ग्रहण किया जावे वह शब्द है

तुल्यजातीयेष्वर्थान्तरभूतेषुविशेषस्यउभयथादृष्टत्वात्

अर्थ-तुल्यजातीयोंमें व अर्थान्तरभूतोंमें (विजातीय विशेषके दोनों प्रकारसे दृष्ट (प्रत्यक्ष) होनेसे ॥ २२ ॥

एकद्रव्यत्वान्नद्रव्यम् ॥ २३ ॥

अर्थ-एक द्रव्य सम्बन्धी होनेसे अर्थात् एक द्रव्यमें होनेसे द्रव्य नहीं है ॥ २३ ॥

नापिकर्मचाक्षुषत्वात् ॥ २४ ॥

अर्थ-चक्षुका विषय वा चक्षुगोचर न होनेसे कर्मभी नहीं है

गुणस्यसतोऽपवर्गःकर्मभिःसाधर्म्यम् ॥ २५ ॥

अर्थ-विद्यमान गुण रूपका अपवर्ग (जल्द नाश होना) साथ साधर्म्य है ॥ २५ ॥

सतोलिङ्गाभावात् ॥ २६ ॥

अर्थ-सत्के (विद्यमानके) लिंग (चिह्न वा लक्षण) के न सत् नहीं है ॥ २६ ॥

नित्यवैधर्म्यात् ॥ २७ ॥

अर्थ-नित्यके विरुद्ध होनेसे ॥ २७ ॥

अनित्यश्चायंकारणतः ॥ २८ ॥

[illegible]र्थ-कारणसे (कारणसे उत्पन्न होनेसे) यह अनित्य है ।

नचासिद्धंविकारात् ॥ २९ ॥

[illegible]र्थ-और विकार होनेसे असिद्ध नहीं है ॥ २९ ॥

अभिव्यक्तौदोषात् ॥ ३० ॥

र्थ-प्रकट होनेमें दोष होनेसे ॥ ३० ॥

संयोगाद्विभागाच्चशब्दाच्चशब्दनिष्पत्तिः ॥ ३१ ॥

र्थ-संयोगसे व विभागसे व शब्दसे शब्दकी सिद्धि वा उत्पत्ति है ॥ ३१ ॥

लिङ्गाच्चानित्यश्शब्दः ॥ ३२ ॥

र्थ-और लिंग होनेसे शब्द अनित्य है ॥ ३२ ॥

द्वयोस्तुप्रवृत्तेरभावात् ॥ ३३ ॥

र्थ-परन्तु दोकी प्रवृत्तिके अभावसे ॥ ३३ ॥

प्रथमाशब्दात् ॥ ३४ ॥

अर्थ-प्रथमाशब्दसे ॥ ३४ ॥

सम्प्रतिभावाच्च ॥ ३५ ॥

अर्थ-पहिचान होनेसेभी ॥ ३५ ॥

संदिग्धासतिबहुत्वे ॥ ३६ ॥

अर्थ-बहुत होनेपरभी संदिग्ध है ॥ ३६ ॥

संख्याभावःसामान्यतः ॥ ३७ ॥

अर्थ-सामान्यसे संख्याका होना है ॥ ३७ ॥

इति द्वितीयाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् ॥ २ ॥

प्रसिद्धाइन्द्रियार्थाः ॥ १ ॥

अर्थ-इन्द्रियोंके अर्थ प्रसिद्ध हैं ॥ १ ॥

इन्द्रियार्थप्रसिद्धिरिन्द्रियार्थेभ्योऽर्थान्तरस्यहेतुः ॥२॥

अर्थ-इन्द्रियोंके अर्थोंकी [illegible] (सामान्य बोध) इंद्रि[illegible] थोंसे भिन्न

सोऽनपदेशः ॥ ३ ॥

अर्थ-वह अनपदेश (हेत्वाभास) है ॥ ३ ॥

कारणाऽज्ञानात् ॥ ४ ॥

अर्थ-कारणोंके ज्ञानरहित होनेसे अथवा कारणोंमें ... होनेसे ॥ ४ ॥

कार्येषुज्ञानात् ॥ ५ ॥

अर्थ-कार्योंमें ज्ञानसे ॥ ५ ॥

अज्ञानाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ-अज्ञानसेभी ॥ ६ ॥

अन्यदेवहेतुरित्यनपदेशः ॥ ७ ॥

अर्थ-हेतु अन्यही होताहै इस्से अनपदेश (हेत्वाभास) है

अर्थान्तरंह्यर्थान्तरस्यानपदेशः ॥ ८ ॥

अर्थ-अर्थांतर (सम्बन्धरहित भिन्न पदार्थ) ... (भिन्नपदार्थका) अनपदेश (हेत्वाभास) होता है ॥ ८ ॥

संयोगिसमवाय्येकार्थसमवायिविरोधिच ॥ ९ ॥

अर्थ-संयोगि, समवायि, एकार्थ, समवायि व विरोधि लिंग ...

कार्यकार्यान्तरस्य ॥ १० ॥

अर्थ-कार्य कार्यान्तरका (अन्यकार्यका) अर्थात् कार्यान्त रलिङ्ग होता है ॥ १० ॥

विरोध्यभूतंभूतस्य ॥ ११ ॥

अर्थ-भूतका (हुयेका) अभूत (न हुआ) विरोधी है ॥ ११ ॥

भूतमभूतस्य ॥ १२ ॥

अर्थ-भूत अभूतका अर्थात् भूत अभूतका लिंग है ॥ १२ ॥

भूतोभूतस्य ॥ १३ ॥

प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य ॥ १४ ॥

[अर्थ]-अपदेश (हेतु)के प्रसिद्धि (व्याप्तिज्ञान)पूर्वक होनेसे॥ १४॥

अप्रसिद्धोऽनपदेशोऽसनसंदिग्धश्चानपदेशः ॥१५॥

अर्थ-अप्रसिद्ध अनपदेश है और असन व संदिग्धभी अनप[देश] है ॥ १५ ॥

यस्माद्विपाणीतस्मादश्वः ॥ १६ ॥

[अ]र्थ-जिससे सींगवाला है तिस्से घोडा है अर्थात् इस हेतुसे [इ]सके सींग हैं यह घोडा है ॥ १६ ॥

[य]स्माद्विषाणीतस्माद्गौरितिचानैकान्तिकस्योदाहरणम्१७

[अ]र्थ-जिससे सींगवाला है तिससे गौ है यह अनेकान्तिकका [उदा]हरण है ॥ १७ ॥

आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्यन्निष्पद्यतेतदन्यतः ॥ १८ ॥

अर्थ-आत्मा व इंद्रिय व इंद्रियोंके अर्थके सन्निकर्ष (आवरण-[रहि]त संयोग)से जो ज्ञान होता है वह अन्य (भिन्न) है ॥ १८ ॥

प्रवृत्तिनिवृत्तीचप्रत्यगात्मनिदृष्टेपरत्रलिङ्गम् ॥ १९ ॥

अर्थ-प्रत्येकको अपने आत्मामें ज्ञात हुई प्रवृत्ति व निवृत्ति [पर]व आत्मा होनेमें लिंग है ॥ १९ ॥

इति तृतीयाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

[आ]त्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षेज्ञानस्यभावोऽभावश्चमनसोलिङ्गं१

अर्थ-आत्मा व इन्द्रियके अर्थोंके सन्निकर्ष होनेमें ज्ञानका होना [व न] होना मनका लिंग (मनके होनेका लक्षण) है ॥ १ ॥

तस्यद्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ २ ॥

अर्थ-उसका द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुके समान व्याख्यात है॥२॥

प्रयत्नायौगपद्याज्ज्ञानायौगपद्याच्चैकम् ॥ ३ ॥

अर्थ–प्रयत्नोंके युगपत् (अनेकका एक वारगी होना) व ज्ञानोंके युगपत् न होनेसे एक है ॥ ३ ॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराःसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनोलिङ्गानि

अर्थ–प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मनोगति (गति), इंद्रियान्तरविकार (एक इंद्रियके विषयका प्रत्यक्ष दूसरे इंद्रियमेंभी विषयसम्बन्धके स्मरणसे विकारहोना), दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्नभी आत्माके लिंग हैं ॥ ४ ॥

तस्यद्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ ५ ॥

अर्थ–उसका द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुके समान व्याख्यात

यज्ञदत्तइतिसन्निकर्षेप्रत्यक्षाभावाद्दृष्टलिङ्गंनविद्यते॥

अर्थ–सन्निकर्षमें यह यज्ञदत्त है ऐसा प्रत्यक्ष न होनेसे (प्रत्यक्ष) लिंग नहीं है ॥ ६ ॥

सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ॥ ७ ॥

अर्थ–सामान्यतो दृष्टसेभी विशेष नहीं है ॥ ७ ॥

तस्मादागमिकः ॥ ८ ॥

अर्थ–तिससे आगमिक है (वेदप्रमाणसे सिद्ध है) ॥ ८ ॥

अहमितिशब्दस्यव्यतिरेकान्नागमिकः ॥ ९ ॥

अर्थ–मैं इस शब्दके भेदसे केवल वेदसे सिद्ध नहीं है ॥

यदिदृष्टमन्वक्षमहंदेवदत्तोऽहंयज्ञदत्तइति ॥

अर्थ–जो मैं देवदत्त हूँ ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष वा इंद्रियजन्य है तो अनुमानसे क्या प्रयोजन है यह सूत्रमें शेष है ॥ १

दृष्टआत्मनिलिङ्गेएकएवदृढत्वात्प्रत्यक्षवत्प्रत्यय

अर्थ–दृष्ट (प्रत्यक्ष हुये) आत्मामें अनुमान होनेमें ए प्रत्यक्षके समान प्रत्यय (बोध) होता है ॥ ११

त्तोगच्छतियज्ञदत्तोगच्छतीत्युपचाराच्छरीरेप्रत्ययः॥

र्थ-देवदत्त जाता है यज्ञदत्त जाता है यह उपचारसे
में प्रत्यय (बोध) होताहै ॥ १२ ॥

संदिग्धस्तूपचारः ॥ १३ ॥

र्थ-उपचार तो संदिग्ध (संदेहयुक्त)है ॥ १३ ॥

मितिप्रत्यगात्मनिभावात्परत्राभावादर्थान्तरप्रत्यक्षः ॥

र्थ-मैं यह बोध अपने आत्मामें होनेसे व परमें न होनेसे भिन्न
प्रत्यक्ष है ॥ १४ ॥

देवदत्तोगच्छतीत्युपचारादभिमाना-
त्तावच्छरीरप्रत्यक्षोऽहंकारः ॥ १५ ॥

अर्थ-देवदत्त चलता है यह बोध उपचारसे अभिमानद्वारा
रप्रत्यक्ष (जिसमें शरीरप्रत्यक्षका विषय होताहै वह) अ-
रहै अर्थात् शरीरको प्रत्यक्ष वा प्रत्यक्षका विषय करनेवाला
कार हैं ॥ १५ ॥

संदिग्धस्तूपचारः ॥ १६ ॥

अर्थ-उपचार तो संदिग्ध है ॥ १६ ॥

शरीरविशेषाद्यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञानंविषयः ॥ १७॥

अर्थ-शरीरविशेषसे (शरीरके भिन्न होनेसे) यज्ञदत्त व विष्णु-
त्रका ज्ञानविषय प्रत्यक्षका विषय नहीं होता है ॥ १७ ॥

अहमितिमुख्ययोग्याभ्यांशब्दवद्व्यतिरेका-
व्यभिचाराद्विशेषसिद्धेर्नागमिकः ॥ १८॥

अर्थ-मैंका बोध मुख्य व योग्य (द्रव्य गुणों) से शब्दके समान
तिरेक (भेद) का व्यभिचार न होनेसे अर्थात् व्यतिरेककी
ातिसे विशेषकी सिद्धिसे आगमिक (वेदप्रमाणसे सिद्ध) नहीं है॥

अर्थ-प्रयत्नोंके युगपत् (अनेकका एक वारगी होना) व ज्ञानोंके युगपत् न होनेसे एक है ॥ ३ ॥

प्राणापाननिमेषोन्मेषजीवनमनोगतीन्द्रियान्तर [illegible] ॥४॥

अर्थ-प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, जीवन, मनोगति (गति), इंद्रियान्तरविकार (एक इंद्रियके विषयका प्रत्यक्ष दूसरे इंद्रियमेंभी विषयसम्बन्धके स्मरणसे विकारहोना) दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्नभी आत्माके लिंग हैं ॥ ४ ॥

तस्यद्रव्यत्वनित्यत्वेवायुनाव्याख्याते ॥ ५ ॥

अर्थ-उसका द्रव्यत्व व नित्यत्व वायुके समान ...

यज्ञदत्तइतिसन्निकर्षेप्रत्यक्षाभावाद्दृष्टलिङ्गंनविद्यते

अर्थ-सन्निकर्षमें यह यज्ञदत्त है ऐसा प्रत्यक्ष न होनेसे (प्रत्यक्ष) लिंग नहीं है ॥ ६ ॥

सामान्यतोदृष्टाच्चाविशेषः ॥ ७ ॥

अर्थ-सामान्यतो दृष्टसेभी विशेष नहीं है ॥ ७ ॥

तस्मादागमिकः ॥ ८ ॥

अर्थ-तिससे आगमिक है (वेदप्रमाणसे सिद्ध है) ॥

अहमितिशब्दस्यव्यतिरेकान्नागमिकः ॥ ९

अर्थ-मैं इस शब्दके भेदसे केवल वेदसे सिद्ध नहीं है

यदिदृष्टमन्वक्षमहंदेवदत्तोऽहंयज्ञदत्तइति ॥

अर्थ-जो मैं देवदत्त हूं ऐसा ज्ञान प्रत्यक्ष या इंद्रियजन्य है तो अनुमानसे क्या प्रयोजन है यह सूत्रमें शेष है ॥ १०

दृष्टयात्मनिलिङ्गेएकएवदृढत्वात्प्रत्यक्षवत्प्रत्ययः ।

अर्थ-दृष्ट (प्रत्यक्ष हुये) आत्मामें अनुमान होनेमें एक होनेसे प्रत्यक्षके समान प्रत्यय (बोध) होता है ॥ ११ ॥

दत्तोगच्छतियज्ञदत्तोगच्छतीत्युपचाराच्छरीरेप्रत्ययः ॥
अर्थ-देवदत्त जाता है यज्ञदत्त जाता है यह उपचारसे रमें प्रत्यय (बोध) होताहै ॥ १२ ॥

संदिग्धस्तूपचारः ॥ १३ ॥
अर्थ-उपचार तो संदिग्ध (संदेहयुक्त)है ॥ १३ ॥

हमितिप्रत्यगात्मनिभावात्परत्राभावादर्थान्तरप्रत्यक्षः ॥
अर्थ-मैं यह बोध अपने आत्मामें होनेसे व परमें न होनेसे भिन्न प्रत्यक्ष है ॥ १४ ॥

देवदत्तोगच्छतीत्युपचारादभिमाना-
त्तावच्छरीरप्रत्यक्षोऽहंकारः ॥ १५ ॥
अर्थ-देवदत्त चलता है यह बोध उपचारसे अभिमानद्वारा रीरप्रत्यक्ष (जिसमें शरीरप्रत्यक्षका विषय होताहै वह) अ-कारहै अर्थात् शरीरको प्रत्यक्ष वा प्रत्यक्षका विषय करनेवाला हंकार हैं ॥ १५ ॥

संदिग्धस्तूपचारः ॥ १६ ॥
अर्थ-उपचार तो संदिग्ध है ॥ १६ ॥

तुशरीरविशेषाद्यज्ञदत्तविष्णुमित्रयोर्ज्ञानंविषयः ॥ १७ ॥
अर्थ-शरीरविशेषसे (शरीरके भिन्न होनेसे) यज्ञदत्त व विष्णु-मित्रका ज्ञानविषय प्रत्यक्षका विषय नहीं होता है ॥ १७ ॥

अहमितिमुख्ययोग्याभ्यांशब्दवद्व्यतिरेका-
व्यभिचाराद्विशेषसिद्धेर्नागमिकः ॥ १८ ॥
अर्थ-मैंका बोध मुख्य व योग्य (द्रव्य गुणों) से शब्दके समान व्यतिरेक (भेद) का व्यभिचार न होनेसे अर्थात् व्यतिरेककी प्राप्तिसे विशेषकी सिद्धिसे आगमिक (वेदप्रमाणसे सिद्ध) नहीं है॥

शरीर इन्द्रिय व विपयसंज्ञक (नामवाला) तीन होताहै ॥ १ ॥

प्रत्यक्षाप्रत्यक्षाणांसंयोगस्या-
प्रत्यक्षत्वात्पञ्चात्मकंनविद्यते ॥ २ ॥

अर्थ-प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्षोंका संयोग प्रत्यक्ष न होनेसे

गुणान्तराप्रादुर्भावाच्चनत्र्यात्मकम् ॥ ३ ॥

अर्थ-अन्य गुणके प्रकट न होनेसे त्र्यात्मक (५ तीन भूतोंसे संयुक्त) नहीं है ॥ ३ ॥

अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धः ॥ ४ ॥

अर्थ-परन्तु अणुओंका संयोग प्रतिषेधरहितहै ॥ ४ ॥

तत्रशरीरंद्विविधंयोनिजमयोनिजञ्च ॥ ५ ॥

अर्थ-तिनमें शरीर योनिज व अयोनिज दोप्रकारकाहै

अनियतदिग्देशपूर्वकत्वात् ॥ ६ ॥

अर्थ-नियत दिशा व देश पूर्वक न होनेसे ॥ ६ ॥

धर्मविशेषाच्च ॥ ७ ॥

अर्थ-धर्मविशेषसेभी ॥ ७ ॥

समाख्याभावाच्च ॥ ८ ॥

अर्थ-नामोंके होनेसेभी ॥ ८ ॥

संज्ञायाअनादित्वात् ॥ ९ ॥

अर्थ-संज्ञाके अनादि होनेसे ॥ ९ ॥

सन्त्ययोनिजाः ॥ १० ॥

अर्थ-विनायोनि उत्पन्न हैं ॥ १० ॥

दलिङ्गाच्च ॥ ११ ॥
दलिंगसे (वेदके प्रमाणसे अथवा वेदद्वारा प्रमाण
मी ॥ ११ ॥
तुर्थोध्यायस्यद्वितीयमाह्निकम् । चतुर्थोऽध्यायःसमाप्तः ॥ ४ ॥

आत्मसंयोगप्रयत्नाभ्यांहस्तेकर्म ॥ १ ॥
आत्माके संयोग व प्रयत्नसे हाथमें कर्म होता है ॥ १ ॥
तथाहस्तसंयोगाच्चमुसलेकर्म ॥ २ ॥
तथा हाथके संयोगसे मुसलमें कर्म होता है ॥ २ ॥
तजमुसलादौकर्मणिव्यतिरेकादकारणंहस्तसंयोगः
अभिघात (ठोकर वा चोट) से उत्पन्न कर्म मुसलआदि-
पृथक् होनेसे हाथका संयोग कारण नहीं है ॥ ३ ॥
तथात्मसंयोगोहस्तकर्मणि ॥ ४ ॥
तथा हाथके कर्ममें आत्माका संयोग कारण नहीं है ॥ ४ ॥
अभिघातान्मुसलसंयोगः ॥ ५ ॥
-अभिघात सब मुसलके संयोगसे हाथमें कर्म होता है॥५॥
आत्मकर्महस्तसंयोगाच्च ॥ ६ ॥
-आत्माका कर्ममें हाथके संयोगसे ॥ ६ ॥
संयोगाभावेगुरुत्वात्पतनम् ॥ ७ ॥
-संयोगके न होनेमें गुरुत्व (गुरुआई) से पतन (गिरना)
है ॥ ७ ॥
नोदनविशेषाभावान्नोर्ध्वंनतिर्यग्गमनम् ॥ ८ ॥
-प्रेरण विशेषके अभावसे न ऊपर गमन होता है न तिर-
मन होता है ॥ ८ ॥
प्रयत्नविशेषान्नोदनविशेषः ॥ ९ ॥
-प्रयत्नविशेषसे नोदन (प्रेरणा) होता है ॥ ९ ॥

नोदनविशेषादुदसनविशेषः ॥ १० ॥

अर्थ-प्रेरणविशेषसे विशेष ऊपरको फेंकना होता है ॥ १'

हस्तकर्मणादारककर्मव्याख्यातम् ॥ ११ ॥

अर्थ-हाथके कर्मके समान बालकका कर्म व्याख्यात है।

तथादग्धस्याविस्फोटने ॥ १२ ॥

अर्थ-तैसे ही दग्ध (जले या जलाये) का कर्म वि' (फूटने) में ॥ १२ ॥

प्रयत्नाभावेप्रसुप्तस्यचलनम् ॥ १३ ॥

अर्थ-प्रयत्नके न होनेमें सुप्तका चलन कर्म होता है ॥ १

तृणेकर्मवायुसंयोगात् ॥ १४ ॥

अर्थ-वायुके संयोगसे तृणमें कर्म होता है ॥ १४ ॥

मणिगमनंसूच्यभिसर्पणमदृष्टकारणम् ॥ १५ ॥

अर्थ-मणिके चलने व सूचियोंके सरकने वा सन्मुख ' अदृष्ट कारण है ॥ १५ ॥

इषावयुगपत्संयोगविशेषाःकर्मान्यत्वेहेतुः ॥ १

अर्थ-अनेक एक साथ न होनेवाले संयोगविशेष बाणमें अन्य होनेमें हेतु है ॥ १६ ॥

नोदनादाद्यमिषोःकर्मतत्कर्मकारिताच्चसं-
स्कारादुत्तरंतथोत्तरमुत्तरञ्च ॥ १७ ॥

अर्थ-बाणका आद्य (आदिमें हुआ) कर्म नोदनसे (होता है व आद्यकर्मसे करायेगये बाणसे हुये वेगरूप संस उत्तरकर्म तथा एकएकसे, उत्तरकर्म होता है अर्थात् आदि कारण (हेतु) से हुये बाणके (कर्म) वेगरूप संस्कारसे त्तर कर्म होतेहैं ॥ १७ ॥

संस्काराभावेगुरुत्वात्पतनम् ॥ १८ ॥

अर्थ-संस्कारके अभावमें (न रहनेमें) गुरुत्वसे पतन होता है

इति पंचमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

नोदनाभिघातात्संयुक्तसंयोगाच्चपृथिव्यांकर्म ॥ १ ॥

अर्थ-प्रेरणासे अभिघातसे संयुक्तसंयोगसे पृथिवीमें (पृथिवीद्रव्यमें) कर्म होता है ॥ १ ॥

तद्विशेषेणादृष्टकारितम् ॥ २ ॥

अर्थ-उनके विशेष (भेद)से हुये कर्म अदृष्ट कारणसे होतेहैं२॥

अपांसंयोगाभावेगुरुत्वात्पतनम् ॥ ३ ॥

अर्थ-संयोगके न रहनेमें गुरुत्वसे जलोंका पतन होता है ॥ ३॥

द्रवत्वात्स्यन्दनम् ॥ ४ ॥

अर्थ-जलके द्रवत्वसे (पतला होनेसे) वहना होता है अर्थात् ता है ॥ ४ ॥

नाड्योवायुसंयोगादारोहणम् ॥ ५ ॥

अर्थ-नाडी (सूर्यकी किरणें) व वायुके संयोगसे जलके आरो-
। (ऊपरचढने को) करती हैं ॥ ५ ॥

नोदनापीडनात्संयुक्तसंयोगाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ-नोदनसे पीडनसे (घातसे) व संयुक्तसंयोगसे ॥ ६ ॥

वृक्षाभिसर्पणमित्यदृष्टकारितम् ॥ ७ ॥

अर्थ-वृक्षमें जलका अभिसर्पण (जलका सब वृक्षमें जाना) दृष्टकारणसे होता है ॥ ७ ॥

अपांसंघातोविलयनंचतेजःसंयोगात् ॥ ८ ॥

अर्थ-जलोंका जमना व पिघलना तेजके संयोगसे होता है॥८॥

तत्रविस्फूर्जथुर्लिङ्गम् ॥ ९ ॥

अर्थ-तिनमें घोरगरज लिङ्ग (चिह्न) है ॥ ९ ॥

अपांसंयोगाद्विभागाच्चस्तनयित्नोः ॥ ११ ॥

अर्थ–जलोंके संयोगसे व मेघके विभागसे ॥ ११ ॥

पृथिवीकर्मणातेजःकर्मवायुकर्मचव्याख्यातम् ॥

अर्थ–पृथिवीकर्मके समान तेजका कर्म व वायुका ख्यात है ॥ १२ ॥

अग्नेरूर्ध्वज्वलनंवायोस्तिर्यक्पवन-
मणूनांमनसश्चाद्यकर्मादृष्टकारितम् ॥ १३ ॥

अर्थ–अग्निकी ज्वालाका ऊपरको उठना वायुका तिरछा अणुओंका व मनका आद्यकर्म (सृष्टिकी आदिमें हुआ अदृष्टकारणसे होता है ॥ १३ ॥

हस्तकर्मणामनसःकर्मव्याख्यातम् ॥ १४ ॥

अर्थ–हाथके कर्मके समान मनका कर्म व्याख्यात है ॥ १४

आत्मेन्द्रियमनोर्थसन्निकर्षात्सुखदुःखे ॥ १५ ॥

अर्थ–आत्मा, इन्द्रिय, मन व अर्थके सन्निकर्षसे सुख व होते हैं ॥ १५ ॥

तदनारम्भआत्मस्थेमनसिशरीरस्यदुःखाभावःसंयोगः

अर्थ–आत्मामें स्थिरहुये मनमें उसका आरंभ (मनके आरंभ) न होना शरीरके दुःखका अभाव होना संयोग(

अपसर्पणमुपसर्पणमशितपीतसंयोगाः
कार्यान्तरसंयोगाश्चेत्यदृष्टकारितानि ॥ १७ ॥

अर्थ–देहसे मनका निकलना व देहमें प्रवेश करना व पियेहुयेके साथ संयोग व अन्यकार्योंके संयोग होते हैं ॥ १७ ॥

[illegible] ॥ १८ ॥

ी–उसके अभावमें संयोगका अभाव व प्रादुर्भाव (प्रकटता) ा मोक्ष है ॥ १८ ॥

द्रव्यगुणकर्मनिष्पत्तिवैधर्म्यादभावस्तमः ॥ १९ ॥

र्थ–द्रव्य गुण कर्मके सिद्धान्तके विरुद्ध धर्म होनेसे तम व है ॥ १९ ॥

तेजसोद्रव्यान्तरेणावरणाच्च ॥ २० ॥

र्थ–तेजका अन्यद्रव्यसे आवरण होनेसे भी ॥ २० ॥

दिक्कालाकाशञ्चक्रियावद्वैधर्म्यान्निष्क्रियाणि ॥२१॥

र्थ–दिशा काल व आकाश क्रियावान द्रव्योंसे विरुद्ध धर्म होनेसे क्रियारहितहैं ॥ २१ ॥

एतेनकर्माणिगुणाश्चव्याख्याताः ॥ २२ ॥

–ऐसे ही कर्म व गुण व्याख्यात है॥ २२ ॥

निष्क्रियाणांसमवायःकर्मभ्योनिषिद्धः ॥ २३ ॥

–क्रियारहित पदार्थोंका समवाय कर्मोंसे निषिद्ध (निषेध गया) है ॥ २३ ॥

कारणंत्वसमवायिनोगुणाः ॥ २४ ॥

–परन्तु गुण असमवायिका कारण हैं ॥ २४ ॥

गुणैर्दिग्व्याख्याता ॥ २५ ॥

ी–गुणोंके समान दिशा व्याख्यात है ॥ २५ ॥

कारणेनकालः ॥ २६ ॥

र्थ–कारणके समान काल है ॥ २६ ॥

। पञ्चमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । इति पञ्चमाध्यायः समाप्तः ॥ ५ ॥

बुद्धिपूर्वावाक्यकृतिर्वेदे ॥ १ ॥

अर्थ–बुद्धिपूर्वक वाक्यकी रचना वेदमें है ॥ १ ॥

ब्राह्मणेसंज्ञाकर्मसिद्धिलिङ्गम् ॥ २ ॥

अर्थ–ब्राह्मणमें संज्ञाकर्म (नामकरण वा नामवर्णन) होनेका चिह्न है ॥ २ ॥

बुद्धिपूर्वोददातिः ॥ ३ ॥

अर्थ–बुद्धिपूर्वक दान है अर्थात् दानका प्रतिपादन है ॥

तथाप्रतिग्रहः ॥ ४ ॥

अर्थ–तैसेही प्रतिग्रह है ॥ ४ ॥

आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात् ॥

अर्थ–अन्य आत्माके गुण अन्यआत्मामें कारण न होनेसे

तद्दुष्टभोजनेनविद्यते ॥ ६ ॥

अर्थ–वह दुष्टके भोजनमें नहीं होता ॥ ६ ॥

दुष्टंहिंसायाम् ॥ ७ ॥

अर्थ–जो हिंसामें प्रवृत्त होता है वह दुष्ट है ॥ ७ ॥

तस्यसमभिव्याहारतोदोषः ॥ ८ ॥

अर्थ–उसकी संगतिसे दोष होता है ॥ ८ ॥

तददुष्टेनविद्यते ॥ ९ ॥

अर्थ–वह अर्थात् दोष जो दुष्ट नहीं है उसमें नहीं होता ॥

पुनर्विशिष्टेप्रवृत्तिः ॥ १० ॥

अर्थ–फिर विशिष्ट (उत्तम) में प्रवृत्ति होना चाहिये ॥

समेहीनेवाप्रवृत्तिः ॥ ११ ॥

अर्थ–सम अथवा हीनमें प्रवृत्ति हो ॥ ११ ॥

एतेनहीनसमविशिष्टधा[illegible]

अर्थ–इससे (पूर्वकथनसे) हीन सम विशिष्ट धार्मिकों[illegible] ग्रहण व्याख्यात है ॥ १२ ॥

तथाविरुद्धानांत्यागः ॥ १३ ॥

अर्थ–तैसेही विरुद्धोंका त्याग है ॥ १३ ॥

हीनेपरेत्यागः ॥ १४ ॥

र्थ–हीनमें परमें त्याग है अर्थात् परमें त्याग होना उचित है॥१४॥

समेआत्मत्यागःपरत्यागोवा ॥ १५ ॥

अर्थ–सममें अपना त्याग वा परका (दूसरेका) त्याग उचित है१५

विशिष्टेआत्मत्यागइति ॥ १६ ॥

अर्थ–विशिष्टमें अपना त्याग उचित है ॥ १६ ॥

इति षष्ठाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

दृष्टादृष्टप्रयोजनानांदृष्टाभावेप्रयोजनमभ्युदयाय ॥ १॥

अर्थ–दृष्टप्रयोजन (जिनकामोंका प्रयोजन प्रत्यक्ष होता है) व दृष्टप्रयोजन (जिनका प्रयोजन प्रत्यक्ष नहीं होता) उनके मध्यमें के अभावसे तत्वज्ञान वा मोक्षके अर्थ प्रयोजन है ॥ १ ॥

अभिषेचनोपवासब्रह्मचर्यगुरुकुलवासवानप्रस्थयज्ञ-दानप्रोक्षणदिङ्नक्षत्रमन्त्रकालनियमाश्चादृष्टाय ॥२॥

अर्थ–अभिषेचन, उपवास, ब्रह्मचर्य, गुरुकुलवास, वानप्रस्थ, , दान, प्रोक्षण, दिशा, नक्षत्र, मन्त्र व कालनियम अदृष्टके हैं ॥ २ ॥

चातुराश्रम्यमुपधाअनुपधाच ॥ ३ ॥

अर्थ–चार आश्रमोंके कर्म उपधा व अनुपधा हैं ॥ ३ ॥

भावदोषउपधाऽदोषोऽनुपधा ॥ ४ ॥

अर्थ–धर्मभावमें दोष होना उपधा, धर्मभावमें दोष न होना अनुपधा है ॥ ४ ॥

यदिष्टरूपरसगंधस्पर्शंप्रोक्षितमभ्युक्षितंचतच्छुचि॥५॥

अर्थ–जो इष्ट रूप रस गंध स्पर्श मोक्षित और पवित्र हैं ॥ ५ ॥

अशुचीतिशुचिप्रतिषेधः ॥ ६ ॥

अर्थ–अशुचि यह शुचिका प्रतिषेध है ॥ ६ ॥

अर्थांतरञ्च ॥ ७ ॥

अर्थ–अन्य अर्थभी ॥ ७ ॥

अयतस्यशुचिभोजनादभ्युदयोनविद्यते नियमाभावाद्विद्यतेवार्थान्तरत्वाद्यमस्य ॥ ८

अर्थ–यमरहितके शुचि भोजन करनेसे नियमके कल्याण वा स्वर्ग नहीं होता व होताभी है, यमके (भिन्न पदार्थ) होनेसे ॥ ८ ॥

असतिचाभावात् ॥ ९ ॥

अर्थ–होनेमेंभी अभावसे (न होनेसे) ॥ ९ ॥

सुखाद्रागः ॥ १० ॥

अर्थ–सुखसे राग होता है ॥ १० ॥

तन्मयत्वाच्च ॥ ११ ॥

अर्थ–उसी मय होनेसेभी ॥ ११ ॥

अदृष्टाच्च ॥ १२ ॥

अर्थ–अदृष्टसेभी ॥ १२ ॥

जातिविशेषाच्च ॥ १३ ॥

अर्थ–जातिविशेषसेभी ॥ १३ ॥

इच्छाद्वेषपूर्विकाधर्माधर्मप्रवृत्तिः ॥ १४ ॥

अर्थ–इच्छा व द्वेषपूर्वक धर्म व अधर्ममें प्रवृत्ति होती है ॥

[illegible] ॥ १५ ॥

[illegible] संयोग व विभाग होता है ॥ १५ ॥

कारणवहुत्वाच्च ॥ ९ ॥

अर्थ-कारण बहुत होनेसेभी ॥ ९ ॥

अतोविपरीतमणु ॥ १० ॥

अर्थ-इससे विपरीत अणु है ॥ १० ॥

अणुमहदितितस्मिन्नविशेषभावाद्विशेषाभावाच्च॥

अर्थ-जो अणु व महत् ऐसा व्यवहार व ज्ञान है
शेषके भावसे (होनेसे) व विशेषके अभावसे (न होनेसे)

एककालत्वात् ॥ १२ ॥

अर्थ-एक काल होनेसे ॥ १२ ॥

दृष्टान्ताच्च ॥ १३ ॥

अर्थ-दृष्टान्तसेभी ॥ १३ ॥

अणुत्वमहत्त्वयोरणुत्वमहत्त्वाभावःकर्मगुणैर्व्याख्यातः

अर्थ-अणुत्व व महत्त्वमें अणुत्व व महत्त्वका न होना
गुणोंके समान व्याख्यात है ॥ १४ ॥

कर्मभिःकर्माणिगुणैश्चगुणाव्याख्याताः ॥ १५

अर्थ-कर्मोंसे रहित कर्म गुणोंसे रहित गुण व्याख्यातहैं ॥

अणुत्वमहत्त्वाभ्यांकर्मगुणाश्चव्याख्याताः ॥

अर्थ-अणुत्व महत्त्वसे रहित कर्म व गुण व्याख्यात हैं ॥

एतेनह्रस्वदीर्घत्वेव्याख्याते ॥ १७ ॥

अर्थ-इसी प्रकारसे ह्रस्वत्व व दीर्घत्व व्याख्यात हैं ॥ १७

अनित्येऽनित्यम् ॥ १८ ॥

...में अनित्य है ॥ १८ ॥

नित्येनित्यम् ॥ १९ ॥

... नित्य है ॥ १९ ॥

नित्यंपरिमण्डलम् ॥ २० ॥

र्थ-परिमण्डल नित्य है ॥ २० ॥

अविद्याचविद्यालिंगम् ॥ २१ ॥

र्थ-और अविद्या विद्याका लिंग (चिह्न) है ॥ २१ ॥

विभवान्महानाकाशस्तथाचात्मा ॥ २२ ॥

र्थ-विभवसे आकाश महान् (महत्परिमाणवान्) है ऐसेही
मा है ॥ २२ ॥

तदभावादणुमनः ॥ २३ ॥

र्थ-उसके अभावसे मन अणु है ॥ २३ ॥

गुणैर्दिग्व्याख्याता ॥ २४ ॥

र्थ-गुणोंसे दिशा व्याख्यात है ॥ २४ ॥

कारणेकालः ॥ २५ ॥

र्थ-कारणमें काल है ॥ २५ ॥

इति सप्तमाध्यायस्यप्रथममाह्निकम् ।

रूपरसगंधस्पर्शव्यतिरेकादर्थान्तरमेकत्वम् ॥ १ ॥

र्थ-रूप रस गंध स्पर्शोंके अभावसे एकत्व भिन्न पदार्थ है॥१॥

तथापृथक्त्वम् ॥ २ ॥

अर्थ-तैसेही पृथक्त्व है ॥ २ ॥

एकत्वैकपृथक्त्वयोरेकत्वैकपृथक्त्वा-
भावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यांव्याख्यातः ॥ ३ ॥

अर्थ-एकत्व व एकपृथक्त्वमें एकत्व व एकपृथक्त्वका अभा-
त्व व महत्त्वके समान व्याख्यातहै ॥ ३ ॥

निःसंख्यत्वात्कर्मगुणानांसर्वैकत्वंनविद्यते

अर्थ-कर्म व गुणोंके संख्यारहित होनेसे सबमें एकत्व

भ्रान्तंतत् ॥ ५ ॥

अर्थ-यह भ्रान्त है ॥ ५ ॥

एकत्वाभावाद्भक्तिस्तुनविद्यते ॥ ६ ॥

अर्थ-एकत्वके अभावसे भक्ति (गौणत्व) तो नहीं है ॥

कार्यकारणयोरेकत्वैकत्वैकपृथक्त्वा-
भावादेकत्वैकपृथक्त्वंनविद्यते ॥ ७ ॥

अर्थ-कार्य व कारणमें एकत्व व एक पृथक्त्वके अभा
होनेसे) एकत्व व एकपृथक्त्व नहीं है ॥ ७ ॥

एतदनित्ययोर्व्याख्यातम् ॥ ८ ॥

अर्थ-यह अनित्योंका व्याख्यात है ॥ ८ ॥

अन्यतरकर्मजउभयकर्मजःसंयोगजश्चसंयोग

अर्थ-अन्यतरके (दोमेंसे एकके) कर्मसे उत्पन्न दोनों
उत्पन्न व संयोगसे उत्पन्न संयोग होता है ॥ ९ ॥

एतेनविभागोव्याख्यातः ॥ १० ॥

अर्थ-इसी प्रकारसे विभाग व्याख्यात है ॥ १० ॥

संयोगविभागयोःसंयोगविभागा-
भावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यांव्याख्यातः ॥ ११ ॥

अर्थ-संयोग व विभागमें संयोग व विभागका अभा
व महत्त्वके समान व्याख्यात है ॥ ११ ॥

कर्मभिःकर्माणिगुणैर्गुणाअणुत्वमहत्त्वाभ्यामिति

अर्थ-कर्मोंसे रहित कर्म, गुणोंसे रहित गुण अणुत्व म
१२ ॥

युत्सिद्ध्यभावात्कार्यकारणयोः संयोगविभागौनविद्येते ॥ १३ ॥

अर्थ-परस्पर संबंधशून्योंकी सिद्धिके अभावसे कार्य व कार-
ा संयोग व विभाग नहीं होते ॥ १३ ॥

गुणत्वात् ॥ १४ ॥

र्थ-गुण होनेसे ॥ १४ ॥

गुणोऽपिविभाव्यते ॥ १५ ॥

र्थ-गुणभी प्रतिपादन किया जाता है ॥ १५ ॥

निष्क्रियत्वात् ॥ १६ ॥

अर्थ-क्रियारहित होनेसे ॥ १६ ॥

असति नास्तीतिच प्रयोगात् ॥ १७ ॥

अर्थ-अविद्यमानमें (जो नहीं है उसमें) नहीं है यह व अन्य
ोग होनेसे ॥ १७ ॥

शब्दार्थावसम्बंधौ ॥ १८ ॥

अर्थ-शब्द या अर्थ सम्बंधरहितहै ॥ १८ ॥

संयोगिनोदण्डात्समवायिनोविशेषाच्च ॥ १९ ॥

अर्थ-संयोगीका दण्डसे समवायीका विशेषसे ज्ञान होता है॥१९॥

सामयिकःशब्दार्थप्रत्ययः ॥ २० ॥

अर्थ-शब्द व अर्थका प्रत्यय (बे.प) सामयिक (सांकेतिक)है२०॥

एकदिक्ाभ्यामेककालाभ्यांसन्निकृष्टविप्रकृ
ष्टाभ्यांपरमपरञ्च ॥ २१ ॥

अर्थ-निकट व दूरवाले जो एक दिशावाले व एक कालवाले दो
ार्थ हैं उनमें पर व अपर यह व्यवहार होता है ॥ २१ ॥

कारणपरत्वात्कारणापरत्वात् ॥ २२ ॥

अर्थ-कारणके परत्वसे व कारणके अपरत्वसे ॥ २२ ॥

परत्वापरत्वयोःपरत्वापरत्वाभावोऽणुत्वमहत्त्वाभ्यांव्याख्यातः ॥ २३ ॥

अर्थ-परत्व व अपरत्वमें परत्व व अपरत्वका अभाव अणुत्व व महत्त्वके समान व्याख्यात है ॥ २३ ॥

कर्मभिःकर्माणि ॥ २४ ॥

अर्थ-कर्मोंसे रहित कर्म हैं ॥ २४ ॥

गुणैर्गुणाः ॥ २५ ॥

अर्थ-गुणोंसे रहित गुण हैं या होते हैं ॥ २५ ॥

इहेदमितियतःकार्यकारणयोःससमवायः ॥ २६ ॥

अर्थ-कारणका यह प्रत्यय (ज्ञान) होताहै कि इसमें यह है वह समवाय है ॥ २६ ॥

द्रव्यत्वगुणत्वप्रतिषेधोभावेनव्याख्यातः॥ २७ ॥

अर्थ-द्रव्यत्व व गुणत्वका प्रतिषेध भावके समान व्याख्यात है ॥ २७ ॥

तत्त्वंभावेन ॥ २८ ॥

अर्थ-उसका एक होना भावके समान है ॥ २८ ॥

इति सप्तमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । इति सप्तमाध्यायः समाप्तः ॥ ७ ॥

द्रव्येषुज्ञानंव्याख्यातम् ॥ १ ॥

अर्थ-द्रव्योंमें (द्रव्योंके वर्णनमें) ज्ञान व्याख्यान किया गया है ॥ १ ॥

तत्रात्मामनश्चाप्रत्यक्षे ॥ २ ॥

अर्थ-तिनमें आत्मा व मन प्रत्यक्ष नहीं हैं ॥ २ ॥

अर्थ-तैसेही जल, तेज, वायु, रस, रूप स्पर्शविशेष होनेसे ॥६॥

इत्यष्टमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । इत्यष्टमाध्यायः समाप्तः ॥ ८ ॥

क्रियागुणव्यपदेशाभावात्प्रागसत् ॥ १ ॥

अर्थ-क्रिया व गुणका कथन न होनेसे प्रागसत् है (पूर्वमेंनहीं है)१॥

सदसत् ॥ २ ॥

अर्थ-सत् असत् हो जाता है ॥ २ ॥

असतःक्रियागुणव्यपदेशाभावादर्थान्तरम् ॥ ३ ॥

अर्थ-क्रिया व गुणके व्यवहारके अभावसे (न होनेसे) असत्-से सत् भिन्न पदार्थ है ॥ ३ ॥

सच्चासत् ॥ ४ ॥

अर्थ-सत् असत्भी हो जाता है ॥ ४ ॥

यच्चान्यदसदतस्तदसत् ॥ ५ ॥

अर्थ-जो इससे और असत् है वह असत् है ॥ ५ ॥

असदितिभूतप्रत्यक्षाभावाद्भूतस्मृतेर्विरोधिप्रत्यक्षवत् ॥६॥

अर्थ-असत् है (विद्यमान नहीं है) यह प्रत्यक्ष होना भूत प्रत्यक्षके अभावसे व भूत स्मृतीसे विरोधीके प्रत्यक्षके समान है॥६॥

तथाऽभावेभावप्रत्यक्षत्वाच्च ॥ ७ ॥

अर्थ-तथा अभावमें प भाव प्रत्यक्ष होनेसे ॥ ७ ॥

एतेनाघटोऽगौरधर्मश्चव्याख्यातः ॥ ८ ॥

अर्थ-इसीप्रकारसे घटका न होना गौका न होना धर्मका न होना व्याख्यात है ॥ ८ ॥

अभूतंनास्तीत्यनर्थान्तरम् ॥ ९ ॥

अर्थ-नहीं हुआ नहीं है यह अनर्थान्तर है अर्थात् एकही अर्थ वाचक है ॥ ९ ॥

नास्तिघटोगेहइतिसतोघटस्यगेहसंसर्गप्रतिषेधः॥१०॥

अर्थ-परमें पट नहीं है यह सत् पटका व परके संसर्ग (सं वा संयोग) का प्रतिषेध है ॥ १० ॥

आत्मन्यात्ममनसोःसंयोगविशेषादात्मप्रत्यक्षः ॥ ११ ॥

अर्थ-आत्मामें आत्मा व मनके संयोगविशेषसे आत्म प्रत्यक्ष होताहै ॥ ११ ॥

तथाद्रव्यान्तरेषुप्रत्यक्षम् ॥ १२ ॥

अर्थ-तैसाही अन्य द्रव्योंमें प्रत्यक्ष होताहै ॥ १२ ॥

असमाहितान्तःकरणाउपसंहृतसमाधयस्तेषाञ्च॥१३

अर्थ-जो असमाहितान्तःकरण (समाधिरहित अ करणवियुक्त योगी) हैं उनको व जो उपसंहृतसमा (समाधिको सिद्ध किये हुये सिद्धियोंको प्राप्त) हैं उन आत्माआदि द्रव्य पदार्थोंका प्रत्यक्ष होताहै ॥ १३ ॥

तत्समवायात्कर्मगुणेषु ॥ १४ ॥

अर्थ-उसके समवायसे कर्म व गुणोंमें प्रत्यक्ष ज्ञान होताहै॥१४

आत्मसमवायादात्मगुणेषु ॥ १५ ॥

अर्थ-आत्माके समवायसे आत्माके गुणोंमें ॥ १५ ॥

इति नवमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ॥

अस्येदंकार्यंकारणंसंयोगिविरोधि समवायिचेतिलैङ्गिकम् ॥ १ ॥

अर्थ-इसका यह कार्य है यह कारण है यह संयोगि है यह विरोधी है यह समवायिहै ऐसा ज्ञान होना लैङ्गि है ॥ १ ॥

अस्येदंकार्यकारणसंबंधश्चावयवाद्भवति ॥ २ ॥

अर्थ-इसका यह कार्यकारणका सम्बंध अवयवसे होताहै ॥ २ ॥

एतेनशाब्दंव्याख्यातम् ॥ ३ ॥

अर्थ-इसीके समान शाब्द (शब्दसे हुआ) ज्ञान व्याख्यात है ॥ ३ ॥

हेतुरपदेशोलिङ्गप्रमाणंकरणमित्यनर्थान्तरम् ॥४॥

अर्थ-हेतु, अपदेश, लिङ्ग, प्रमाण, करण यह एकही अर्थवालेहैं अर्थात् इनके अर्थमें भेद नहींहै ॥ ४ ॥

अस्येदंबुद्ध्यपेक्षितत्वात् ॥ ५ ॥

अर्थ-इसका यह इस बुद्धिकी अपेक्षासंयुक्त होनेसे ॥ ५ ॥

आत्ममनसोःसंयोगविशेषात्संस्काराच्चस्मृतिः ॥६॥

अर्थ-आत्मा व मनके संयोगविशेषसे व संस्कारसे स्मृति होतीहै ॥ ६ ॥

तथास्वप्नः ॥ ७ ॥

अर्थ-तैसेही स्वप्न होताहै ॥ ७ ॥

स्वप्नान्तिकम् ॥ ८ ॥

अर्थ-तैसेही स्वप्नके मध्यमें हुआ ज्ञान ॥ ८ ॥

धर्माच्च ॥ ९ ॥

अर्थ-धर्मसे अधर्मसे ॥ ९ ॥

इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥ १० ॥

अर्थ-इन्द्रियोंके दोषसे व संस्कारके दोषसे अविद्या होतीहै ॥ १० ॥

तद्दुष्टंज्ञानम् ॥ ११ ॥

अर्थ-यह दुष्ट ज्ञान है ॥ ११ ॥

अदुष्टंविद्या ॥ १२ ॥

अर्थ-जो दुष्ट ज्ञान नहीं है यह विद्या है ॥ १२ ॥

आर्षसिद्धदर्शनञ्चधर्मेभ्यः ॥ १३ ॥

अर्थ–ऋषियोंका ज्ञान व सिद्ध दर्शन (सिद्धोंका ज्ञान) धर्मसे होता है ॥ १३ ॥

इतिनवमाध्यायस्यद्वितीयमाह्निकम् । इति नवमाध्यायः समाप्तः ॥९॥

इष्टानिष्टकारणविशेषाद्विरोधाच्च मिथःसुखदुःखयोरर्थान्तरभावः ॥ १ ॥

अर्थ–इष्ट (जिनकी इच्छा की जाय) व अनिष्ट (जिनकी इच्छा न की जाय) कारणोंके विशेषसे (भेदसे) व विरोधसे सुख व दु:ख दोनोंकी भिन्नता है ॥ १ ॥

संशयनिर्णयान्तराभावश्चज्ञानान्तरत्वेहेतुः ॥ २ ॥

अर्थ–संशय व निर्णयके अन्तर्गत न होनाभी ज्ञानसे भिन्न होनेमें हेतु है ॥ २ ॥

तयोर्निष्पत्तिःप्रत्यक्षलैंगिकाभ्याम् ॥ ३ ॥

अर्थ–उनकी (संशय व निर्णयकी) उत्पत्ति प्रत्यक्ष व अनुमानसे होती है ॥ ३ ॥

अभूदित्यपि ॥ ४ ॥

अर्थ–हुआ यहभी ॥ ४ ॥

सतिकार्यादर्शनात् ॥ ५ ॥

अर्थ–होनेपरभी कार्यका ज्ञान न होनेसे ॥ ५ ॥

एकार्थसमवायिकारणान्तरेषुदृष्टत्वात् ॥ ६ ॥

अर्थ–एकार्थ समवायि (एकही अर्थके साथ समवायसम्बंध प्राप्त) कारण जो भिन्न कारण हैं उनमें ज्ञान होनेसे ॥ ६ ॥

एकदेशइत्येकस्मिञ्छिरःपृष्ठमुदरम् मर्माणितद्विशेषस्तद्विशेषेभ्यः ॥ ७ ॥

अर्थ–एक शरीरमें एक देशमें शिर, पृष्ठ, उदर व अन्य अवयव (अङ्ग) जो हैं उनका विशेष (भेद) उनके विशेष का- कारणोंके भेदसे हैं) ॥ ७ ॥

इति दशमाध्यायस्य प्रथममाह्निकम् ।

कारणमितिद्रव्येकार्यसमवायात् ॥ १ ॥

अर्थ-कारण है (कारण यह ज्ञान वा प्रयोग) द्रव्यमें कार्यके समवायसे ॥ १ ॥

संयोगाद्वा ॥ २ ॥

अर्थ-अथवा संयोगसे ॥ २ ॥

कारणेसमवायात्कर्माणि ॥ ३ ॥

अर्थ-कारणमें समवायसे कर्म ॥ ३ ॥

तथारूपेकारणैकार्थसमवायाच्च ॥ ४ ॥

अर्थ-तैसेही रूपमें कारणके साथ एक अर्थमें समवाय होनेसे॥४

कारणेसमवायात्संयोगःपटस्य ॥ ५ ॥

अर्थ-कारणमें समवायसे पटका संयोग असमवायि कारण है ५॥

कारणकारणसमवायाच्च ॥ ६ ॥

अर्थ-कारणके कारण समवायसे भी ॥ ६ ॥

संयुक्तसमवायादग्नेर्वैशेषिकम् ॥ ७ ॥

अर्थ-संयुक्त समवायसे अग्निका वैशेषिक (विशेष गुणात्मक उष्णता) गुण निमित्तकारण है ॥ ७ ॥

दृष्टानांदृष्टप्रयोजनानांदृष्टाभावेप्रयोगोऽभ्युदयाय॥८॥

अर्थ-दृष्टोंका (देखे हुए कर्मोंका) व दृष्टप्रयोजनोंका (जिनका प्रयोजन शास्त्रसे व उपदेशसे ज्ञात है ऐसे कर्मोंका) प्रयोग (अनुष्ठान) दृष्ट न होनेसे (फल दृष्ट न होनेसे अर्थात् प्रत्यक्ष न होनेसे अभ्युदयके अर्थ है)स्वर्गप्राप्ति वा आत्मज्ञान उदय होनेके लिये है ८

तद्वचनादाम्नायस्यप्रामाण्यम् ॥ ९ ॥

अर्थ-उसके वचनसे वेदका प्रामाण्य है ॥ ९ ॥

इति दशमाध्यायस्य द्वितीयमाह्निकम् । इति दशमोऽध्यायः समाप्तः ॥ १० ॥

इति कणाद विनिर्मितानि वैशेषिकदर्शनसूत्राणि समाप्तानि

अथ वैशेषिकदर्शनसूत्रभाष्यानुवाद।
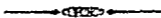
ओं परमात्मने नमः॥ श्रीमत्सत्यपरब्रह्म परमात्माको
णाम करके वैशेषिकदर्शनके सूत्रोंको जो भाष्य श्री
त्मा प्रशस्तदेवजीने वर्णन किया है उसको देशभा
अनुवाद करताहूं उक्त महात्माने इस भाष्यकी विलक्षण री
वर्णन कियाहै अर्थात् विना किसी सूत्रके प्रतीक रक्खे
सूत्रोंका आशय हृदयमें धारण करके उसका व्याख्यान कि
यद्यपि विना अवतरणिकाके यह नहीं ज्ञान होता कि कि
सूत्रपर क्या क्या भाष्य है परन्तु विद्वान जन अ
विचारकर समझ सक्तेहैं और कहीं कहीं भाष्यके नीचे
णीमें. सूत्र व अध्यायकी संख्या व सूत्रभी रख दिया ज
इस भाष्यमें जिन षट् पदार्थोंको श्रीकणादमुनिसूत्रोंमें
किया है उनके आशयको अच्छे प्रकारसे वर्णन कियाहै
विद्यार्थियोंको अतिउपकारी समझकर विद्याभिलाषी
व विद्या अध्यापन करनेवालोंके हितके लिये देशभ
अनुवाद करनेको प्रवृत्त हुवाहूँ विद्वान सज्जनोंसे यह प्रार्थ
कि जो कहीं प्रमादसे अशुद्ध हो जाय तो अनुग्रह करके
व निर्दोष करलेवें अनुवादमें सुगमताके लिये जहाँ सं
शब्द विशेष रक्खा जायगा वहाँ उसके आगे ऐसा (
कोष्ट चिह्न बनाके उसके मध्यमें उसका अर्थ भाषाशब्दमें
दिया जायगा अथवा उसका भावार्थ कोष्टमें लिख
जायगा अर्थात् कोष्टमें जो अर्थ लिखा जायगा वह
शब्दहीका अर्थ नहीं लिखा जायगा, जो संस्कृत शब्दके
व्यक्त करने व उसके स्थानमें रखनेके लिये यथार्थ भाष
मिलैगा तौ भाषाशब्द रक्खा जायगा नहीं तो भावा
फलितार्थ भाषामें रक्खा जायगा अथवा उसका अ
कोष्टमें व्यक्त करादिया जायगा कोष्टमें जो अर्थ लिखा ज

धर्महीसे प्रकट वा प्रकाशमान होता है (प्रश्न) द्रव्य पदार्थ कौनहैं और उनका साधर्म्य व वैधर्म्य क्या है (उ पृथिवी जल तेज वायु आकाश काल दिशा आत्मा सामान्य व विशेष नामसे कहे गयेहैं इनसे भिन्न अधिक नाम न कहे जानेसे (सूत्रकारसे लोकसे न कहे जानेसे) द्रव्य न नवसे अधिक नहीं हैं।

---

१ धर्महीसे तत्त्वज्ञान होना कहनेका आशय यह है कि सत्यभाष व ब्रह्मचर्यआदि आश्रममें वेदमें उपदेश कियेगये कर्तव्य उत्तम वा कर्म व साधनका नाम धर्म है आदरसे बहुतकालतक धर्मसेवनसे (सत्वगुणरूपा बुद्धि वा अन्तःकरण) की शुद्धता होती है उसके विवेकसे तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है बिनाधर्मके सेवन केवल अध्यात्म पढ, सुन व समझकर कर्मको त्याग करना वा धर्मको तत्त्वज्ञानका न होना कहना केवल अज्ञान है वेदसे प्रथम धर्मकी मुख्यता इससे तत्त्वज्ञान होनेमें प्रथम कारण होनेसे धर्महीसे तत्त्वज्ञान होता कहना युक्त है क्योंकि विना अन्तःकरणके शुद्ध हुये तत्त्वज्ञान व आत्माके ध्यानमें बुद्धि स्थिर नहीं होती व अन्तःकरणकी शुद्धता होती है योग भी धर्म वा कर्म है।

२ नवही हैं यह कहनेमें यह शङ्का करते हैं कि प्रकाशमान चलनेके साथ तम वा छायामें चलनेका व रूपका प्रत्यक्ष होता है गुणवान होनेसे तम द्रव्य है परन्तु क्रिया व रूपवान होनेसे आकाश, दिशा व आत्मा नहीं है. रूपवान होनेसे मन व वायु नहीं है स्पर्श होनेसे पृथिवी,जल वा तेज नहीं है इससे तम दशम द्रव्य है नवही युक्त नहीं है. इसका उत्तर यह है कि तम कोई द्रव्य नहीं है प्रका अभाव मात्र है जिस २ देशमें प्रकाश होता है वा होता जाता है देशमें अंधकार नहीं होता वा नहीं रहता वा नष्ट होता जाता है जहां २ प्रकाशका आवरण होता है वा होता जाता है वहां अं होता है वा होता जाता है ऐसे प्रकाश प्राप्तहुये देशमें न रहने व रहने व आवरक (२ रोकने वा आड करनेवाले) द्रव्यसे तमर्मे होनेसे तेजके अभावमें तम प्रत्यक्ष होने व आवरक द्रव्य अथवा यान द्रव्यके चलनेमें जहां २ आवरण रहता वा होता जाता है वह क्रियाका बोध होनेसे तेजके प्राप्तहुये स्थानमें न रहने व तेज न रहे प्रत्यक्ष होनेमें तेजके अभावरूप तम वा छायामें भ्रमसे क्रिया व बोध होता है इससे दशम द्रव्य नहीं है नवही द्रव्य कहना युक्त है।

रूप रस गंध स्पर्श संख्या परिमाण पृथक्त्व संयोग विभाग
त्व अपरत्व बुद्धि सुख दुःख इच्छा द्वेष प्रयत्न सत्तरह
जिनको सूत्रकारने स्पष्ट वर्णन किया है और जो अदृष्ट
र्यात् सूत्रमें चशब्दसे समुचित किया है गुरुत्व द्रवत्व स्नेह
स्कार धर्म अधर्म शब्द सात यह मिलकर चौवीस गुणहैं,
क्षेपण अवक्षेपण आकुञ्चन प्रसारण व गमन यही पाँच कर्म
गमनके ग्रहणसे भ्रमण रेचन स्यन्दन (वहना वास रकना)
द्वंज्वलन तिर्य्यग्गमन (तिरछा चलना) उद्गमन (उपर जाना)
मन आदिगमनहीके विशेष भेदहैं भिन्न जाति नहीं हैं।

सामान्य दोविधका है पर व अपर वह (सामान्य) समान
त्तिके ज्ञानका कारण है उसमेंसे महाविषय (अधिक
षयवाला) होनेसे सत्ता परहै क्योंकि वह समान होने-
ात्रकी वृत्तिका हेतु होनेसे सामान्यहीहै वा होता है विशेष
हीं होता द्रव्यत्व आदि अल्पविषयवाले होनेसे अपर हैं
योंकि यह (अपर) अनुवृत्ति (समानहोनेकी वृत्ति) व व्या-
त्ति (भेद होनेकी वृत्ति) दोनोंका हेतु होनेसे सामान्य होता
व विशेषभी होताहै नित्य द्रव्य वृत्तिवाले नित्य द्रव्यमें
हनेवाले अन्त्य अर्थात् अंतमें होनेवाले जिनसे और विशेष
न होवे ऐसे गुण विशेषहैं यह निश्चय करके अत्यन्त व्यावृत्ति
(पृथक् होनेकी बुद्धि) के हेतु होनेसे विशेषही होतेहैं विना
योग (विनासंयोग) के सिद्ध अर्थात् आपसे सिद्ध आधारी व
आधारभूतोंको जो सम्बंध इसमें यह प्रत्यय (ज्ञान) होनेका
हेतु होताहै यह समवाय है। इस प्रकारसे विना धर्मोके धर्मी-
का उद्देश किया गया ॥ अस्तित्व (होना) अभिधेयत्व (नाम
कहनेके योग्य होना) ज्ञेयत्व (जाननेके योग्य होना) यह
छःपदार्थोंका साधर्म्य है अर्थात् यह अस्तित्व आदि छः पदा-
र्थोंमें एकही समान होतेहैं आश्रितत्व (आश्रित होना) नित्य

धर्मंहीसे प्रकट वा प्रकाशमान होता है (प्रश्न) द्रव्य पदार्थ कौनहैं और इनका साधर्म्य व वैधर्म्य क्या है (. पृथिवी जल तेज वायु आकाश काल दिशा आत्मा सामान्य व विशेष नामसे कहे गयेहैं इनसे भिन्न और नाम न कहे जानेसे (सूत्रकारसे लोकसे न कहे जानेसे) द्रव्य नवसे अधिक नहीं हैं।

१ धर्मंहीसे तत्त्वज्ञान होना कहनेका आशय यह है कि ... व ब्रह्मचर्यआदि आश्रममें वेदमें उपदेश कियेगये कर्तव्य उत्तम या कर्म व साधनका नाम धर्म है आदरसे बहुतकालतक धर्मसेवनसे (सत्वगुणरूपा बुद्धि वा अन्तःकरण) की शुद्धता होती है उसके विवेकसे तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है बिनाधर्मके सेवन केवल पढ, सुन व समझकर कर्मको त्याग करना वा धर्मको नहीना कहना केवल अज्ञान है वेदसे प्रथम धर्मकी मुख्यता इससे तत्त्वज्ञान होनेमें प्रथम कारण होनेसे धर्मंहीसे तत्त्वज्ञान होना कहना युक्तहै क्योंकि बिना अन्तःकरणके शुद्ध हुये तत्त्वज्ञान व आत्माके ध्यानमें बुद्धि स्थिर नहीं होती व अन्तःकरणकी शुद्धता होती है योग भी धर्म वा कर्म है।

२ नवही हैं यह कहनेमें यह शङ्का करते हैं कि प्रकाशमान के चलनेके साथ तम वा छायामें चलनेका व रूपका प्रत्यक्ष होता है गुणवान होनेसे तम द्रव्य है परन्तु क्रिया व रूपवान होनेसे आकाश, काल, दिशा व आत्मा नहीं है. रूपवान होनेसे मन व वायु नहीं है स्पर्शरहित होनेसे पृथिवी,जल वा तेज नहीं है इससे तम दशम द्रव्य है नवही कहना युक्त नहीं है. इसका उत्तर यह है कि तम कोई द्रव्य नहीं है प्रकाशका अभाव मात्र है जिस २ देशमें प्रकाश होता है वा होता जाता है उस देशमें अंधकार नहीं होता वा नहीं रहता वा नष्ट होता जाता है जहां २ प्रकाशका आवरण होता है वा होता जाता है वहां अंधकार होता है वा होता जाता है ऐसे प्रकाश प्राप्तहुये देशमें न रहने व रहने व आवरक (२ रोकने वा आड करनेवाले) द्रव्यसे तेजमें होनेसे तेजके अभावमें तम प्रत्यक्ष होने व आवरक द्रव्य अथवा यान द्रव्यके चलनेमें जहां २ आवरण रहता वा होता जाता है क्रियाका बोध होनेसे तेजके प्राप्तहुये स्थानमें न रहने व तेज न रहे प्रत्यक्ष होनेमें तेजके अभावरूप तम वा छायामें भ्रमसे क्रिया व बोध होता है इससे दशम द्रव्य नहीं है नवही द्रव्य कहना युक्त है।

समान रहनेवाले हैं ॥ पृथिवीआदि पांच भूत इन्द्रियोंके
रण बाह्य इंद्रियोंमेंसे एक एक इंद्रियसे ग्राह्य (ग्रहणके योग्य)
विशेष गुणवाले होते हैं ॥ चार (पृथिवी आदि) द्रव्यके आरंभ
स्पर्शवान होते हैं ॥ तीन प्रत्यक्ष, द्रव (वहनेवाले) व रूपवान् होतेहैं
(पृथिवी व जल) गुरु (गरू) व रसवान् (स्वादवाले होते
॥ भूतात्मा (पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश) वैशेषिक
विशेषसंबंधी) गुणवाले हैं पृथिवीजलरूप (पृथिवी व जलके
र्य) पदार्थोंमें चौदह गुण होते हैं ॥ आकाशात्मा (आकाश
ारणसे उत्पन्न वा आकाशके कार्य)पदार्थों (शब्दों)में लाक्षणिक
कदेशमें होनेवाले विशेष गुणवाले होते हैं ॥ दिशा व काल
ांच गुणवाले होते हैं व सब उत्पन्न होनेवालोंके निमित्त कारण
ोते हैं ॥ पृथिवी व तेजमें नैमित्तिक द्रवत्व होनेका योग है
सेही सबमें साधर्म्य व विपरीत होनेसे वैधर्म्य वाच्य (कह-
नेके योग्य) हैं अब एक एकका वैधर्म्य वर्णन कियाजाता है ॥
पृथ्वीत्वके सम्बंधसे अर्थात् पृथिवी सामान्य विशेषके लक्षणके
सम्बंधसे रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व,
संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व व संस्कार-
वाली पृथिवी होती है । गुणप्रतिपादन करनेके अधिकारमें
रूपआदि गुणविशेष सिद्ध हैं अर्थात् सूत्रकार महात्माने
रूप, रस, गंध, स्पर्शवती पृथिवी यह सूत्रमें कहा है इस
वचनसे सिद्ध है । संख्याआदि चाक्षुप (चक्षुसे देखने
योग्य) है यह कहनेसे सात संख्या आदि चाक्षुप हैं । पतनके
उपदेशसे (संयोगके अभावमें गुरुत्वसे पतन होता है ऐसा
सूत्रकारके उपदेशसे) गुरुत्व है । जलके समान कहनेसे (अग्निके
संयोगसे घी रांगा व मोमका जलके समान द्रवत्व होता है यह
अ० २ आह्निक १ सू० ६ में सूत्रकारके कहनेसे) द्रवत्व है
(द्रवत्व गुण है) उत्तरकर्म होनेके वचनसे (अ० ५ । १ । १७
में) बाणमें प्रथम कर्म प्रेरणासे होता है फिर उससे उत्पन्न वेगमें

द्रव्योंसे भिन्न अन्यमें (अनित्योंमें) होताहै ॥ द्रव्य आदि प
समवायि (समवायवान्) व अनेक होतेहैं गुण आदि प
(गुण कर्म सामान्य विशेष व समवाय) निर्गुण निि
(गुणरहित व क्रियारहित) होतेहैं द्रव्यआदि तीनों
सत्ताके साथ सम्बंध होताहै व तीनों सामान्य व विशेषवान् हो
इनका समवाय अर्थनामसे कहा जाता है अर्थात् इनके स
वायको अर्थ कहते हैं व यह धर्म अधर्मके कर्ता होतेहैं अ
भावविशेषसे धर्म अधर्मके हेतु होतेहैं ॥ कारणवानही प
कार्य व अनित्य होतेहैं पारिमाण्डल्य (परमाणुका परिमा
आदिसे (परिमण्डल व परम महत्त्वआदि भिन्न पदर्थ कारण हो
द्रव्यआदि तीनों कारण होतेहैं नित्य द्रव्यसे अन्य (भि
अर्थात् अनित्य द्रव्यमें आश्रित होतेहैं सामान्यआदि ती
अपने स्वरूपसे होते हैं बुद्धिही उनका लक्षण है अर्थात् बुद्धि
(बुद्धिमात्रसे) ज्ञात होते हैं कार्य, कारण, नहीं होते व सामा
विशेषवान् नहीं होते नित्य होते हैं व अर्थ नामसे नहीं कहे ज
पृथिवी आदि नव द्रव्य हैं यह अपने स्वरूपमें आरंभक होते
गुणवान् होते हैं कार्य व कारण उनके विरोधी नहीं होते व अ
गुणोंसे विशेषवान् होते हैं ॥ आश्रित न होना व नित्य होना यह
अवयवी द्रव्यसे भिन्नमें होते हैं अर्थात् निरवयव द्रव्यमें होते
पृथिवी, जल, तेज, वायु, आत्मा व मन अनेक व अपर जाति है
पृथिवी, जल, तेज, वायु व मन क्रियावान होते हैं मूर्त पर, अ
व वेगवान होते हैं ॥ आकाश, काल, दिशा व आत्मा सर्वग
(सर्वव्यापक) परम, महान् सबके साथ संयोगवाले, सर्वदेश

---

१ द्रव्य गुण कर्मको अर्थ कहतेहैं जैसा अध्याय ८ आ० २ सू० ८
कहा है अर्थ इति द्रव्यगुणकर्मसु, और द्रव्य गुणकर्मोंका द्रव्य गुण का
साथ समवाय है इससे द्रव्य गुण कर्मके समवायको अर्थ नामसे क
जाना कहाहै अथवा द्रव्य गुण कर्म तीनों अर्थ नामसे वाच्य होने
अभिप्राय है ॥

एक समान रहनेवाले हैं ॥ पृथिवीआदि पांच भूत इन्द्रियोंके
ण बाह्य इंद्रियोंमेंसे एक एक इंद्रियसे ग्राह्य (ग्रहणके योग्य)
वेशेष गुणवाले होते हैं ॥ चार (पृथिवी आदि) द्रव्यके आरंभ
स्पर्शवान होते हैं ॥ तीन प्रत्यक्ष, द्रव (वहनेवाले) व रूपवान् होतेहैं
(पृथिवी व जल) गुरु (गरू) व रसवान् (स्वादवाले होते
॥ भूतात्मा (पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश) वैशेषिक
वेशेषसंबंधी) गुणवाले हैं पृथिवीजलरूप (पृथिवी व जलके
र्य) पदार्थोंमें चौदह गुण होते हैं ॥ आकाशात्मा (आकाश
रणसे उत्पन्न वा आकाशके कार्य)पदार्थों (शब्दों)में लाक्षणिक
देशमें होनेवाले विशेष गुणवाले होते हैं ॥ दिशा व काल
च गुणवाले होते हैं व सब उत्पन्न होनेवालोंके निमित्त कारण
ते हैं ॥ पृथिवी व तेजमें नैमित्तिक द्रवत्व होनेका योग है
ऐही सबमें साधर्म्य व विपरीत होनेसे वैधर्म्य वाच्य (कह-
के योग्य) हैं अब एक एकका वैधर्म्य वर्णन कियाजाता है ॥
थ्वीत्वके सम्बंधसे अर्थात् पृथिवी सामान्य विशेषके लक्षणके
म्बंधसे रूप, रस, गंध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व,
योग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व व संस्कार-
ाली पृथिवी होती है। गुणप्रतिपादन करनेके अधिकारमें
रूपआदि गुणविशेष सिद्ध हैं अर्थात् सूत्रकार महात्माने
रूप, रस, गंध, स्पर्शवती पृथिवी यह सूत्रमें कहा है इस
वचनसे सिद्ध है। संख्याआदि चाक्षुष (चक्षुसे देखने
योग्य) है यह कहनेसे सात संख्या आदि चाक्षुष हैं। पतनके
उपदेशसे (संयोगके अभावमें गुरुत्वसे पतन होता है ऐसा
सूत्रकारके उपदेशसे) गुरुत्व है। जलके समान कहनेसे (अग्निके
संयोगसेभी रांगा व मोमका जलके समान द्रवत्व होता है यह
अ० २ आह्नि० १ सू० ६ में सूत्रकारके कहनेसे) द्रवत्व है
(द्रवत्व गुण है) उत्तरकर्म होनेके वचनसे (अ० ५ । १ । १७
में) बाणमें प्रथम कर्म प्रेरणासे होता है फिर उससे (... गर्भ

उत्तर कर्म संस्कारसे होता है इस सूत्रकारके वचनसे संस्का
अभिप्राय यह है कि पृथिवीके कार्य पदार्थ बाणमें उत्तरकर्मसंस्क
कहनेसे पृथिवीमें संस्कारका होनाभी सिद्ध है पृथिव्यादिमें गंध
शुक्लआदि अनेक प्रकारके रूप हैं मधुर आदि छः प्रकारके रस
गंध दो प्रकारका है सुगंध व दुर्गंध । स्पर्श पृथिवीमें शीत
उष्ण (गरम) न होनेपर भी पाकज (पकनेसे उत्पन्न) स
उष्ण (गरम) होता है । यह पृथिवी दो प्रकारकी होती
नित्य व अनित्य । परमाणुलक्षणरूप नित्य व कार्यलक्ष
रूप अनित्य होती है ॥ और यह स्थिर होनेआदि अवय
के सन्निवेशसे विशिष्ट (विशेषगुणसंयुक्त) है ॥ बहुत अ
जातियोंसे संयुक्त है शयन आसनआदि अनेक उपकार कर
वाली है और शरीर इन्द्रिय व विषयनामसे तीन प्रका
इसके कार्य हैं । उनमें शरीर कार्य दो प्रकारका है योनिज
अयोनिज विनाशुक्र (वीर्य) व शोणित (रुधिर) की अपे
देवता व ऋषियोंके शरीर धर्मविशेष सहित अणुओंसे अ
निज (विनायोनि उत्पन्न) होते हैं क्षुद्र जन्तुओंके यात
शरीर अधर्म विशेष सहित अणुओंसे उत्पन्न होते हैं शुक्र
शोणितके मेलसे उत्पन्न योनिज (योनिसे उत्पन्न) होते हैं
यह दो प्रकारके होते हैं जरायुज व अण्डज मानुष, पशुमृग
शरीर जरायुज हैं पक्षी सर्प आदिकोंके शरीर अण्डज हैं
आदिसे अनभिभूत (जल आदिके अणुओंसे तिरस्कारको
प्राप्त) पृथिवीके अवयवोंसे आरब्ध (बनीहुई) गंध ज्ञान
उत्पन्न करनेवाली वा जाननेवाली नासिका इंद्रिय है । द्व्यणुक (
अणुओंसे युक्त) आदि क्रमसे आरब्ध मृत्तिका, पाषाण, स्था
तीन प्रकारके विषय हैं । उनमेंसे ईंटें आदि मृत्तिकाके वि
हैं । पत्थर मणि हीरा आदि पाषाण हैं । तृण, गुल्म, औष
लता, वितान, वनस्पती स्थावर हैं ॥ इति पृथिवीद्रव्यम्

जलत्व (जल होनेका सामान्य विशेष धर्म) के सम्बंधसे जल,
प, रस, स्पर्श, द्रवत्व, स्नेह, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व,
योग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व व संस्कार गुणवाला
ता है ये गुण पूर्वमें कहे हुये पृथिवीके समान जलमें सूत्रकार
वचनसे सिद्ध हैं जलमें रूप शुक्ल रस मधुर स्पर्श शीत है
नेह जलहीमें है व द्रवत्व सांसिद्धिक है अर्थात् स्वभावहीसे
नत्य सिद्ध है जल नित्य व अनित्य भावसे दो विधका है
शरीर, इंद्रिय व विषय नामसे तीन प्रकारका कार्य (जलका
ार्य) है इसमेंसे अयोनिजमात्र शरीर वरुण लोकमें प्रसिद्ध
पृथिवीअवयवोंके उपष्टम्भ (थंभन व स्तंभन) से उपयोगमें
मर्थ है जलकी इंद्रियें सब प्राणियोंके रसके ज्ञानकी कारण
वेजातीय पृथिवीआदिके अवयवों (अणुओं) से तिरस्कारको
हीं प्राप्त. ऐसे जलके अवयवोंसे उत्पन्न रसना (जिह्वा) है व
विषय नदी समुद्र वरफ ओला आदि हैं ॥

इति जलद्रव्यम्।

तेजस्त्व (तेज होनेका सामान्य विशेष धर्म) के अभिसंबंधसे
तेज, रूप, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व,
अपरत्व, द्रवत्व व संस्कार गुणसहित हैं पूर्वके समान तेजमें यह
सूत्रकारके वचनसे सिद्ध है। रूप तेजका शुक्ल व भास्वर (प्रकाश-
रूप) है स्पर्श उष्ण (गरम) है द्रवत्व नैमित्तिक है व द्रवत्वभी
अणुभाव व कार्यभावसे दोविधका है। शरीर इन्द्रिय व विषयनामसे
कार्य तीन प्रकारका है शरीर अयोनिजमात्र सूर्यलोकमें है पृथिवी
सम्बंधी अवयवोंके उपष्टंभसे उपभोगमें समर्थ है। सब प्राणियोंको
रूपको जनानेवाली अन्य पृथिवी आदिके अवयवोंसे तिरस्कारको
प्राप्त.नहीं ऐसे तेजके अवयवोंसे बनी हुई इन्द्रिय चक्षु (नेत्र) है।
विषय चार प्रकारका है भौम, दिव्य, उदर्य व आकरज इनमेंसे
काष्ठइन्धनसे उत्पन्न ऊर्ध्वज्वलनस्वभाव (ऊपरको जलनेका स्वभा-
ववाला) पकाने व पसीना निकालनेमें समर्थ भौम है। इन्धनसु-

न्धनरहित सूर्य व विद्युत्आदिका तेज दिव्य है। खाये हुये अ
रके रसआदि परिणाम करनेमें समर्थ इन्धनरहित उदर्य (उदरव
है। सुवर्ण आदि आकरज है सुवर्ण आदिमें उनमें संयुक्त पृ
आदिके समवायसे रस आदिकी उपलब्धि (प्रत्यक्षता) होती

इति तेजोद्रव्यम् ॥

वायुत्व (वायुका सामान्यविशेष धर्म होने) के अभिस
(सम्बंध)से वायु, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभ
परत्व,अपरत्व व संस्कार गुणवाला है अर्थात् ये गुण वायुमें हैं।
इसका विना पाकसे उत्पन्न (विना अग्निसंयोगसे उत्पन्न हुवा
गरम है न शीत है। स्पर्शगुण वायुमें सूत्रकारके वचनसे सिद्ध
रूपरहित चक्षुग्राह्य न होनेसे उक्त संख्या आदि सप्त गुण हैं
तृणमें कर्म कहनेसे संस्कार है। यह अणु (परमाणु) व कार्यभा
दो विधका है। कार्यलक्षणरूप चार प्रकारका है शरीर, इन्द्रि
विषय व प्राण इनमेंसे केवल अयोनिज शरीर वायुलोकमें है पृ
वीके अवयवोंसे उपष्टंभसे (थंभनेसे) उपभोगमें समर्थ है
प्राणियोंको स्पर्शकी जनानेवाली पृथिवीआदिके अवयवोंसे ति
स्कारको नहीं प्राप्त वायुके अवयवोंसे बनीहुई सब शरीरमें व्या
इन्द्रिय त्वचा (खाल वा चमडा) है। विषयस्पर्शका आश्रय त
इन्द्रियसे जानागया स्पर्श, शब्द, धारण कांपनेका चिह्नरूप तिर
चलनेका स्वभाववाला मेघआदिकोंके प्रेरण व धारण आदि
समर्थ पदार्थ वायु है।प्रत्यक्ष न होनेपरभी सम्मूर्छनसे उसके अने
होनेका अनुमान किया जाता है । समवेग व बलवाले सम
जातिवाले विरुद्ध दिशाओंसे आते हुये वायुओंके परस्पर टक
खाने वा भिडजानेको संमूर्छन कहते हैं । यह संमूर्च्छन त
आदिके घूमने व उपरके चढ़नेसे अवयववान वायुओंके स

१ तृणे कर्म वायुसंयोगात् ५। १। ४ इस सूत्रमें कहे हुये वचनसे।
२ पृथिवीके अवयवोंके उपष्टंभसे (थांभनेसे) यहभी अर्थ ग्राह्य है अर्थ
उपष्टंभ शब्दका अर्थ थंभना व थांभना दोनों होसक्ते हैं॥

पश्चात् उसीमें वायु व जलके परमाणुओंसे उसी क्रमसे महासमु
उत्पन्न हो अतिशय बहताहुवा स्थित होता है उसके पश्चात् उसी
पार्थिव (पृथिवीके) परमाणुओंसे द्व्यणुकआदि क्रमसे उत्प
घनीभूतहो (सघन कठिन रूप हो) महापृथिवी स्थित होती है
उसके पश्चात् उसी महासमुद्रमें तैजस(तेजवाले)परमाणुओंसे द्व्यणु
आदि क्रमसे उत्पन्न महातेजकी राशि देदीप्यमान (अतिश
प्रकाशको करता) स्थित होता है इस प्रकारसे उत्पन्न महाभूतों
महेश्वर (परमेश्वर) के ध्यानमात्रसे पृथिवीके अणुओंसहि
तैजस अणुओंसे महा अण्ड उत्पन्न होता है।[१] उसमें चारमुखवा
सब लोकोंके पितामह ब्रह्माको सब भुवनोंसहित उत्पन्न कर प्रज
ओंकी उत्पत्तिमें नियुक्त करता है। वह परमेश्वरसे नियुक्त (का
में योजित किया गया वा लगायागया) ब्रह्मा अतिशय ज्ञा
वैराग्य ऐश्वर्य्यसंयुक्त सब प्राणियोंके कर्मविपाकको जानकर क
के अनुसार ज्ञान भोग आयुयुक्त मनसे उत्पन्न प्रजापति, मनु, दे
ऋषि, पितृगण पुत्रोंको व मुख बाहु ऊरू (जंघा) पादसे चा
वर्णोंको और अन्य ऊंचे नीचे प्राणियोंको उत्पन्न कर आशय
अनुसार धर्म, ज्ञान, वैराग्य व ऐश्वर्यके साथ संयोजित करता है

---

१ इस चार महाभूतोंके सृष्टि संहार विधिके वर्णनकी समीक्षा की जांती
विचारनेसे यह विदित होता है कि यह सृष्टि संहार विधिका व्याख्या
प्रशस्त पाद वा प्रशस्तदेव नामक भाष्यकार महात्माकृत नहीं है इस
प्रमाण माननेके योग्य नहीं है यह पीछेसे प्रक्षिप्त होना विदित होता है प्रक्षि
व अप्रमाण होनेके हेतु ये हैं प्रथम यह कि ब्रह्माके नाश होनेके काल
अर्थात् नाश होनेमें सृष्टिके नाश होनेका हेतु खिन्न प्राणियोंका रात्रि
विश्राम होना वर्णन किया है यह युक्त नहीं है क्योंकि नष्ट हुये ब्रह्माव
रात्रि हो नहीं सक्ती ब्रह्माकी रात्रिमें विश्राम होना माननेमें ब्रह्माके दि
महीना वर्ष आयु होनेका प्रमाण तथा ब्रह्म (महेश्वर) के नाशका भी संभ
होगा द्वितीय यह कि वायुके पश्चात् क्रम अनुसार आकाशका वर्ण
होना चाहिये क्रमको छोडकर चार भूतोंकी सृष्टिका वर्णन करना युक्त नहीं
५ महर्षि सूत्रकारने चार महाभूतोंकी सृष्टि व संहारको वर्णन नहीं

अनुविधानसे अर्थात् जहाँ एकत्व है वहाँ एक पृथक्त्व इस एकत्वके साथ ही पृथक्त्वभी होनेसे आकाशका द्रव्योंसे पृथक्त्व है अर्थात् आकाश अन्यद्रव्योंसे भि विभुवचनसे (सूत्रकारके) विभु (व्यापक) कहनेके प्रमाणसे अर्थात् अध्याय ७ आह्निक २ सूत्र २२ में य है कि व्यापक होनेसे जैसे आकाश महान (महापरिमाणवाल तैसेही आत्मा है इस वचनप्रमाणसे आकाश महत् प (महापरिमाणवाला) हैं शब्द कारण वचनसे अर्थात् आ० २ सूत्र ३१ में सूत्रकारके इस वचनसे कि संयोगसे गसे व शब्दसे शब्दकी सिद्धि होती है संयोग विभाग असमवायि कारण है व संयोग व विभागका अधिकरण अ समवायि कारण है इससे संयोग विभाग गुण आकाशमें है वचनसे (आकाशमें गुण होनेका सूत्रकारके वचनसे) व अ न होनेसे द्रव्य है । समान असमानजातीय पदार्थोंका (आ कारण न होनेसे नित्य है श्रोत्रभावसे (कर्णरूपसे) सब योंके शब्दज्ञान होनेमें निमित्त है और श्रोत्र श्रवण (क का विवर (छिद्र) नामक शब्दका निमित्त (निमित्तका उपभोगका प्राप्त करनेवाला धर्म अधर्मके साथ उपनिबद्ध (धको प्राप्त) आकाशका एकदेश वा अंश है । उस आ देशके नित्य होनेपर भी उपनिबंधक इन्द्रियके विकल (विकार प्राप्तहोनेसे) बाधिर्य (बहिरापन) होजाता आकाशका वर्णन समाप्त हुवा ।

इत्याकाशद्रव्यम् ।

पर अपर व्यतिकर (परस्पर बदलेमें एक दूसरेके करना) यौगपद्य (अनेकका एक साथ होना) चिर (दे होना) क्षिप्र (जल्दहोना) का प्रत्यय (ज्ञान) होना का लिङ्ग (लक्षण वा चिह्न) है अर्थात् इन गुणोंसे काल जाना है इन प्रत्ययोंके विषयमें पूर्व प्रत्ययोंसे विलक्षण इन प्रत्य उत्पत्तिमें अन्यनिमित्त संभव न होनेसे जो इनमें निमि

सेभी ज्ञान शरीरका गुण नहीं है । इन्द्रिय कारणरूप हैं इन्द्रियोंके
ष्ट हो जानेपर और जब इन्द्रियोंके विषय इन्द्रियोंके समीप नहीं हैं
तबभी इन्द्रियोंके विषयोंका स्मरण होनेसे इन्द्रियोंका गुणभी
ज्ञान नहीं है । अन्यकरणकी अपेक्षा करनेवाला होनेमें युगपत्
ज्ञान (अनेकका एक साथ ज्ञान होना) न होने व फिर स्मृति
ज्ञानका प्रत्यय होनेसे व मनके आपभी करणरूप होनेसे मन-
काभी गुण ज्ञान नहीं है । शेष रहा (बाकी रहा) आत्मा उसीका
कार्य ज्ञान है तिससे (ज्ञानसे) आत्मा जाना जाता है ।
जैसे रथके कर्मसे सारथीका ज्ञान होता है ऐसेही शरीरस-
मवायिनी (सम्बंधवाली) हित अहित प्राप्ति व परिहार (त्याग)
के योग्य प्रवृत्ति व निवृत्तियोंके द्वारा प्रयत्नवान शरीरके
अधिष्ठाता (आत्मा) का अनुमान किया जाता है । प्राण आदिसे
भी आत्माका अनुमान किया जाता है कैसे प्राण आदिसे आ
त्माका अनुमान होता है इसका विवरण करते हैं । शरीरमें
जो वायु (प्राण अपानरूप वायु) है उसमें विकृतकर्म (वि-
कारयोग्य प्राप्त कर्म अर्थात् साधारण वायुके तिरछे चलनेके विप-
रीत शरीरमें बाहर भीतर नीचे ऊपर जाने आनेका कर्म) देखने
व जाननेसे धौंकनीसे धौंकनेवालेके समान आत्माके प्रयत्नवान-
होनेका अनुमान होता है । नियत निमेष (पलक लगने) व
उन्मेष (पलक खुलने) के कर्मसे दारुयंत्र (कठपुतली) के
प्रयोग करनेवालेके समान व देहकी वृद्धि व घावसे भग्न (घायल)
शरीरके घावोंके भरनेसे घरके संवारनेमें घरके स्वामीके समान
इन्द्रियके सम्बंधका निमित्त रूप मनके कर्मसे अभिमत विषयका
ग्राहक (ग्रहण करनेवाला) घरके कोणमें बैठे हुये बालक (एक प्रका-
रका गेंद) के प्रेरण करनेवाले बालकके समान नेत्रके विषयके दे-
खनेके अनन्तर (पश्चात्) रसकी अनुवृत्तिके क्रमसे रसना
(जिह्वा) में विकार होना प्रत्यक्ष होनेसे अनेक झरोखोंके अन्तर्गत
(मध्यमें) बैठा हुया भीतर बाहर दोनोंके देखनेवालेके समान कोई

पुरुप चेतन है यह जाना जाता है। और सुख, दुःख, इ द्वेष, प्रयत्न आदि गुणोंसे कोई गुणी होनेका अनुमान होत और अहंकारसे (शरीर व इन्द्रियोंके साथ) एकवाक्य होनेसे व्याप्य वृत्ति न होनेसे द्रव्यके (शरीर इन्द्रिय द रहनेतक न रहनेसे बाह्यइन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष न होनेसे त शब्दहीसे पृथिवीआदि शब्दसे भेद होनेसे यह (सुख शरीर व इन्द्रियोंके विशेप गुण नहीं हैं। बुद्धि, सुख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, संख्या, प पृथक्त्व, संयोग व विभाग यह उसके (सुख आदि ग आत्माके) गुण हैं। आत्माके लिंग होनेके अधिकारमें आदि प्रयत्नपर्य्यन्त सिद्ध हैं अर्थात् सूत्रकारके वचनसे अध्याय ३ आह्निक २ सूत्र ४ में कहा है प्रयत्नपर्यन्त त्माके लिङ्ग होना सिद्ध है अन्य आत्माके धर्म व अध अन्य आत्मामें कारण न होनेके वचनसे (सूत्रकारके वचन १।५) अर्थात् जिस आत्माके धर्म अधर्म होते हैं उसीको प्राप्त होनेके कारण होते हैं इससे धर्म अधर्मभी आत्माके ग स्मृति उत्पत्तिमें संस्कार होनेका सूत्रकारके वचनसे होनेसे अर्थात् आत्मा व मनके संयोगविशेपसे व सं स्मृति होती है यह सूत्रकारके वर्णन करनेसे (९।२।६) उत्पन्न होनेमें आत्मामें संस्कार कारण होनेसे संस्कारभी आ गुण है। व्यवस्थासे आत्मा नाना अर्थात् अनेक है इस वचन सूत्रकारके वचनसे ३।२।२०) संख्या व इसीसे गुण आत्मामें होना सिद्ध होता है वा सिद्ध है। विभु आकाश महान है तैसेहीं आत्मा है (७।१।२२) इस रके वचनसे आत्मा महान (महत्परिमाणवाला) है। श उत्पन्न होनेसे सुखआदिकोंका संयोग व उसके विनाशक विभाग होता है।

इति आत्मद्रव्यम्।

पुरुष चेतन है यह जाना जाता है। और सुख, दुःख, इ द्वेष, प्रयत्न आदि गुणोंसे कोई गुणी होनेका अनुमान होता और अहंकारसे (शरीर व इन्द्रियोंके साथ) एकवाक्यता होनेसे व्याप्य वृत्ति न होनेसे द्रव्यके (शरीर इन्द्रिय द्रव्य रहनेतक न रहनेसे बाह्यइन्द्रियोंसे प्रत्यक्ष न होनेसे तथा शब्दहीसे पृथिवीआदि शब्दसे भेद होनेसे यह (सुखआ शरीर व इन्द्रियोंके विशेष गुण नहीं हैं। बुद्धि, सुख, दु इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, संख्या, परिम पृथक्त्व, संयोग व विभाग यह उसके (सुख आदि गुण आत्माके) गुण हैं। आत्माके लिंग होनेके अधिकारमें बु आदि प्रयत्नपर्य्यन्त सिद्ध हैं अर्थात् सूत्रकारके वचनसे अध्याय ३ आह्निक २ सूत्र ४ में कहा है प्रयत्नपर्यन्त त्माके लिङ्ग होना सिद्ध है अन्य आत्माके धर्म व अधर्म अन्य आत्मामें कारण न होनेके वचनसे (सूत्रकारके वचनसे १।५) अर्थात जिस आत्माके धर्म अधर्म होते हैं उसीको प्राप्त होनेके कारण होते हैं इससे धर्म अधर्मभी आत्माके गुण स्मृति उत्पत्तिमें संस्कार होनेका सूत्रकारके वचनसे प्रम होनेसे अर्थात् आत्मा व मनके संयोगविशेषसे व संस्का स्मृति होती है यह सूत्रकारके वर्णन करनेसे (९।२।६) स्मृ उत्पन्न होनेमें आत्मामें संस्कार कारण होनेसे संस्कारभी आत्मा गुण है। व्यवस्थासे आत्मा नाना अर्थात् अनेक है इस वचनसे (सूत्रकारके वचनसे ३।२।२०) संख्या व इसीसे पृथ गुण आत्मामें होना सिद्ध होता है वा सिद्ध है। विभु होने आकाश महान है तैसेही आत्मा है (७।१।२२) इस सूत्र रके वचनसे आत्मा महान (महत्परिमाणवाला) है। उत्पन्न होनेसे सुखआदिकोंका संयोग व उसके विनाशक विभाग होता है।

मनत्वके (मनके सामान्य विशेष धर्म होनेके) सम्बंधसे
ा द्रव्य है । आत्मा व इन्द्रियों (बाह्येन्द्रियों) के सांनिध्य (स-
पता) होनेपरभी ज्ञान सुख आदिकोंकी उत्पत्ति न होना
पत्त होनेसे वा जाननेसे और कर्णआदिके व्यापार न होनेमें
ी स्मृतिकी उत्पत्ति देखनेसे करणान्तर (बाह्य इन्द्रियोंसे
त्रिकरण) होना अनुमान दिया जाता है व. बाह्य इन्द्रियोंसे
ण नहीं किये गये सुख आदिकोंका कोई अन्य (मनसे भिन्न)
हक न होनेसेभी कोई अन्य करण होना अनुमान किया
ता है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व,
परत्व व संस्कार उसके गुण हैं। एक साथ अनेक प्रयत्न व
निक ज्ञान न होनेके वचनसे अर्थात् एकसाथ अनेक प्रयत्न व
न न होनेसे एक है (३ । २ । ३) ऐसा सूत्रकारने कहा है
त्रकारके इस वचनसे प्रतिशरीरमें एक होना (मनका एकहोना)
सिद्ध होता है और इसीसे पृथक् होना भी सिद्ध होता है।
ासेः (ज्ञानके) न होनेके वचनसे अर्थात आत्मा, इन्द्रिय व
र्थके सन्निकर्षमें भी ज्ञानका होना व न होना भी मनका लिंग है
ासा सूत्रकारने कहाहै (३ । २ । १) इसमें मनका अणु परिमाण
। तात्पर्य ज्ञान होने व न होनेका हेतु यह है कि जो मन विभु
(व्यापक) होता तो सब इन्द्रियोंका सन्निकर्ष होनेसे इन्द्रियोंका
ज्ञान उत्पन्न होने व बने रहनेसे ज्ञानका अभाव । न होना । [illegible] न
होना। पूर्वदेहके त्याग करने व अन्य देहमें प्रवेश करनेके वचनसे
(सूत्रकारके वचनसे ५ । २ । १७) मनमें, संयोग, विभाग गुण
हैं । व मूर्त होनेसे परत्व, अपरत्व व संस्कारभी मनके गुण हैं ।
स्पर्शरहित होनेसे मन द्रव्यका आरंभक नहीं होता क्रियावान
होनेसे मूर्त है । साधारण विग्रहवान होनेसे आपसे [illegible]
(प्राण वा आपद शक्तिवान न होनेके) प्रसंगसे [illegible] न [illegible]
है । कारण स्पर्श होनेसे परके अर्थ है । गुणवान होनेसे द्रव्य है ।

प्रयत्न व अदृष्ट मन का कारणगुणसे मनमें आशु संयोग (क्र मिकसे नहोनेवाला होना) गुण है।

इति द्रव्यपदार्थः।

गुणानां स्वरूपवर्णनम्।

रस रूप आदि गुण अपने अपने सामान्य विशेष धर्मसे द्रव्यमें आश्रित क्रियारहित व गुणरहित होते हैं रूप, रस, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व (गुरु आई), द्रवत्व (बहना) व वेग ये मूर्त द्रव्योंके गुण हैं। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना व शब्द यह अमूर्त द्रव्योंके गुण संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग व विभाग यह दो गुण हैं। संयोग, विभाग, द्वित्व, पृथक्त्व आदि अनेकमें हैं शेष (बाकी रहे) एकही एकमें होतेहैं। रूप, रस, गंध, स्नेह, सांसिद्धिक द्रवत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्र धर्म, अधर्म, भावना, शब्द वैशेषिक गुण हैं अर्थात् द्रव्यके जनानेवाले विशेष गुणहैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, सं विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, नैमित्तिक द्रवत्व व वेग ये सा गुण हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध बाह्य इन्द्रियोंमेंसे एक इन्द्रियसे एक ग्राह्य हैं (जानने योग्य हैं) संख्या, परि पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह, वेग इन्द्रियोंसे ग्राह्य हैं। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष व प्रयत्न अ करणग्राह्य हैं (मनसे जानने योग्य हैं) गुरुत्व, धर्म, अ भावना यह अतीन्द्रिय हैं (बाह्य इन्द्रियोंसे ग्राह्य नहींहैं) अ कज (जो पकनेसे उत्पन्न न हो वह) रूप, रस, गंध, स्पर्श, परि एकत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह व वेग कारणगुणपूर्वक हैं (कारणगुणसे उत्पन्न होतेहैं) बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना, शब्द कारणगुणपूर्वक होते। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म अ भावना, शब्द, तुला, परिमाण, उत्तरसंयोग, नैमित्तिक द्रव

रत्व, अपरत्व व पाकजगुण, संयोगसे उत्पन्न होतेहैं। संयोग
भाग व वेग कर्मसे उत्पन्न होतेहैं। शब्द व शब्दके उत्तर (पश्चात्)
भाग, विभागसे उत्पन्न होतेहैं। परत्व, अपरत्व, द्वित्व (दो
ना), द्विपृथक्त्व (दो पृथक् होना) आदि बुद्धि अपेक्षासे
ने जाते हैं अर्थात् उनका ज्ञान बुद्धिके अधीनहै। रूप, रस,
ध, उष्णतारहित स्पर्श (जो स्पर्शमें गरमी नहो ऐसा स्पर्श)
ब्द, परिमाण, एकत्व, एक पृथक्त्व, स्नेह यह समान जातिके
त्पन्न करनेवाले हैं। सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न यह असमान
तिके अर्थात् विजातीयके उत्पन्न करनेवाले हैं। संयोग, वि-
ग, संख्या, गुरुत्व, द्रवत्व, उष्णस्पर्श (गरम स्पर्श), ज्ञान-
र्म, अधर्म व संस्कार समान व असमान दोनों जातिवाले
दार्थोंके उत्पन्न करनेवालेहैं। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष,
वना, शब्द स्वाश्रय समवेत अर्थात् जो अपने आश्रयद्रव्यमें
मवायसम्बंधको प्राप्त हैं उनको उत्पन्न करतेहैं। रूप, रस,
ध, स्पर्श, परिमाण, स्नेह, प्रयत्न अपने आश्रयसे भिन्नमें पदार्थ
रंभक होतेहैं। संयोग, विभाग, संख्या, एक, पृथक्त्व, गुरुत्व,
वत्व, वेग, धर्म, अधर्म दोनोंमें (अपने आश्रय पर आश्रयमें)
रंभक (उत्पन्न करनेवाले) होतेहैं। गुरुत्व, द्रवत्व, वेग,
त्न, धर्म, अधर्म, व संयोग विशेषक्रियाके हेतु होतेहैं अर्थात्
से क्रिया होतीहै। रूप, रस, गंध, उष्णता रहित स्पर्श, संख्या,
रिमाण, एक, पृथक्त्व, स्नेह, शब्द, यह असमवायिकारण
तेहैं। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म व
व यह निमित्तकारण होतेहैं। संयोग, विभाग, उष्णस्पर्श,
त्व, द्रवत्व, वेग यह समवायि व निमित्त दोनों कारण
तेहैं। परत्व, अपरत्व, द्वित्व, द्विपृथक्त्व (दो भिन्न होना)
आदि कारण नहीं होते संयोग शब्द व आत्माके गुण एक
देशमें होते हैं। शेष (बाकी रहे) आश्रयव्यापी होतेहैं
(अपने सब आश्रयमें व्यापक होतेहैं)। अपाकज (बिना

पकनेके उत्पन्न हुये गुण) रूप, रस, गंध, स्पर्श, परिमाण एकत्व, एक, पृथक्त्व, गुरुत्व, सांसिद्धिक द्रवत्व [(स्वाभाविक सदा सिद्ध द्रवत्व), स्नेहद्रव्यके बने. रहनेतक रहतेहैं (द्रव्य नष्ट होनेहीमें नष्ट होते हैं अन्यथा नहीं) शेष (बाकी रहे गुण द्रव्य बने परभी नाशको प्राप्त होजाते हैं।

रूपआदि सब गुणोंमेंसे प्रत्येकमें अपर सामान्यके सम्बं होनेसे उनके पृथक् २ रूप आदि नाम कहे जातेहैं उनमें प्रथम रूप गुण वह हैं जो चक्षुग्राह्य है पृथिवी जल व अग्नि होताहै। द्रव्य आदिका ज्ञापक (जनानेवाला) नेत्रोंको द्र ज्ञान होनेमें सहायक व शुक्ल आदि भेदसे अनेक प्रकारका होता है जल आदि परमाणुओंमें रूप नित्य है । पृथ्वीके परमाणुओं अग्निसंयोगसे नष्ट होजाता है अन्य प्रकारका होजाता है इस नित्य नहींहै । सब कार्योंमें (कार्यद्रव्योंमें) कारणगुणपूर्व होताहै । आश्रयके नाश होनेहीपर नष्ट होताहै । रस रसन इन्द्रिय (जिह्वा) से ग्राह्य है । पृथिवी व जलमें होता है जीवन पुष्टि बल व आरोग्यका निमित्तकारण है रसन सह कारी है अर्थात् रससम्बधी प्रत्यक्ष वा स्वादु जाननेमें जिह्वाक सहकारी है. मधुर (मीठा), अम्ल (खट्टा), लवण, कटु (कडुवा तिक्त (चरपरा), कषाय (कसैला) यह उसके भेदहैं। रसके भी नित्य व अनित्य होनेका सिद्धान्त रूपके समान है। गंध घ्राण (नासिका) इन्द्रिय ग्राह्यहै पृथिवीमें होता है । घ्राण इन्द्रियका सहकारी है सुगंध व दुर्गंध दो प्रकारका भेदहै इस का नित्य व अनित्य होना पूर्वके समान व्याख्यात समझना चा हिये स्पर्श त्वच (खाल) इन्द्रियग्राह्य है (त्वचा इन्द्रिय द्वारा जाना जाता है) पृथिवी, जल, तेज व वायुमें होताहै। त्वचइन्द्रियका सहकारी है. (त्वचासे द्रव्य प्रत्यक्ष होनेमें सह कारी होता है) रूपानुविधायी है (जिससे रूप होताहै उसमें स्पर्शभी होता है) शीत, उष्ण और ऐसा जो न शीत हो न

ष्ण हो यह तीन स्पर्शके भेद हैं अर्थात् तीन प्रकारका स्पर्श
ता है इसकाभी नित्य अनित्य होना पूर्वके समान जानना चाहिये॥
पृथिवीके परमाणुओंमें पाकज (पकनेसे उत्पन्न) रूप आदिकों-
की उत्पत्तिका विधान यह है कि अग्निके साथ सम्बंधको प्राप्त
ट आदि कच्चे द्रव्यका अग्निसे अभिघात वा प्रेरण होनेसे उनके
आरंभक अणुओंमें कर्म उत्पन्न होते हैं उनसे विभाग होते हैं
विभागोंसे संयोगोंका नाश होता है संयोगोंके नाशसे कार्य
द्रव्य नाशको प्राप्त होता है उसके नष्ट होनेपर उष्णताकी
अपेक्षा करनेवाले वा रखनेवाले परमाणुओं व अग्निके

---

1 उष्णताकी अपेक्षा अर्थात् आकांक्षा वा आवश्यकता रखनेवाला
योग कहनेका अभिप्राय यह है कि जिस संयोगसे श्यामरूप आ-
दिका विनाश होताहै उसमें उष्णता होनेकी आवश्यकता है इससे वह
सकी आवश्यकता रखता है क्योंकि जो उष्णता न हो तो उक्त रूप
आदिका विनाश न होसके इससे संयोगमें प्राप्त उष्णता जो है उसकी
आवश्यकता रखनेवाला जो संयोग है उससे नाश होता है ऐसेही जहां
जहां अपेक्षा रखनेवाला आगे इस ग्रंथमें वर्णन कियाहै उसका आशय
ऐसाही समझना चाहिये कि आनेकी आवश्यकता रखनेवाला है रखने
वाला कहनेका तात्पर्य यह है कि उसके होनेकी उसमें आवश्यकताही
रहना। अपेक्षा शब्द अप उपसर्ग व ईक्ष धातुसे बनता है
अप उपसर्गके योगसे ईक्ष धातुसे बना अपेक्षा शब्द आकांक्षा करने-
वाले वा अवधि करनेवालेका वाचक होता है इससे अवधि करने वा
अवधि करनेके भावसे यह अर्थ होता है कि उष्णता समयके अवधि
वाला जो संयोग है उससे श्यामरूप आदिका नाश होता है क्योंकि
बिना साधारण संयोगभी घटके साथ हो उष्णता विशेष न होतो
श्यामरूप आदिका विनाश नहीं होता अथवा ईक्ष धातुका अर्थ कोई
आचार्य अंकन अर्थात् लक्षणका ग्रहण करते हैं इससे औष्ण्य (गर्मी)
लक्षणसंयुक्त उक्त संयोग ग्राह्य है। अथवा अपउपसर्गका अर्थ पृथक्
भाव व ईक्ष धातुका अर्थ दर्शन अर्थात् देखना, ज्ञान व विचारना है
इससे विशेष भावसे विचारने व जाननेवाले वा विशेष ज्ञान वा
विचारका अर्थ अपेक्षा शब्दका होता है इन अर्थोंमेंसे जो अर्थ जहां
अच्छा घटितहो वह अर्थ वहां अपेक्षाशब्दका ग्रहण करना चाहिये।

संयोगसे श्याम आदि (रूप आदि) का विनाश होता है। उष्णताकी अपेक्षा रखनेवाले अन्य संयोगसे पाकज (पकनेसे उ गुण) उत्पन्न होते हैं । उसके पश्चात् भोगियोंके प्राप्त अद अपेक्षा करने वा रखनेवाले आत्माके गुण [illegible] (पकेहुये) अणुओंमें कर्म उत्पन्न होनेमें उ[illegible] द्व्यणुक आदि क्रमसे कार्यद्रव्य उत्पन्न होता है[1] । उसमें का गुणोंके क्रमसे रूप आदिकी उत्पत्ति होती है। और वर्तमान का सब अवयवोंमें भीतर व बाहर अग्निसे व्याप्ति न होनेसे कार्यद्र रूपआदिकोंका विनाश वा उनकी उत्पत्ति होना संभव नहीं है व कार्यद्रव्यके विनाशसे अणुओंमें प्रवेश होनेसे भी प्राप्ति व्याप्ति नहीं होती ॥

जिससे एक आदि गणनका (गिननेका) व्यवहार होत उसको संख्या कहते हैं । वह एक द्रव्यमें व अनेक द्रव्यमें होती

---

१ यद्यपि साधारणमें सबको ऐसा होना ज्ञात न हो वा नहीं होता, प वास्तवमें जैसे जलके मिलनेमें मिट्टी आर्द्र (गीली) होजाती है ऐसे अग्निकी उष्णता (गरमी) के संयोग होनेमें सूखी मिट्टी चांदी, र आदि धातुओंके समान पिघलकर पानी मिली हुयेके समान गीली होज है इसीसे सूखी ईंटें जो आँवोंमें पकाई जाती हैं कभी कभी कई एकमें मि जाती है एक पिण्ड बंध जाता है और कभी सुखाये हुये कच्चे घट आँवोंमें पकानेको रक्खे जाते हैं तब उनके मुख सीधे व गोल होते हैं, प पकनेपर जब आँवोंसे निकाले जाते हैं तब उनमेंसे किसी किसीके मु आदिमें टेढ़ाई होजाती है इससे अग्निसंयोगमें उष्णताविशेषसे वि विकारविशेष प्रत्यक्ष होनेसे अणुओंके संयोगमें भेद वा विकार वा हो व कार्यान्तर होना अनुमानसे सिद्ध होताहै और जैसे मनुष्य आदिके शरी आदिमें साधारणमें वही शरीर होनेका प्रत्यय होता है परन्तु सूक्ष्मदृष्टि विचारसे अन्य अन्य दिनोंमें अन्य अन्य भक्षण व पान किये हुये पदार्थ उत्पन्न नये नये रस व धातु होने व पूर्वके मलमूत्रद्वारा निकल जाने हाय होनेसे नित्य भेद होना सिद्ध होता है वही शरीर व परमाणु स नहीं रहते ऐसेही घट आदिमें पाकज गुण होने व पूर्वसंयोग नाश होने अन्य होनेमें कार्यान्तर होना समझना चाहिये ।

संस्कारकी उत्पद्यमानता व गुण बुद्धिकी विनश्यत्ता होती है
सामान्यबुद्धिका विनाश होता है यह एक काल (क्षण) है
उसके पश्चात् द्रव्यके ज्ञानसे द्वित्वगुण बुद्धिका नाश होता है
क्षणान्तरमें (अन्यक्षणमें) संस्कारज्ञानसे द्रव्य बुद्धि (ज्ञान
काभी नाश होता है । ऐसे ही त्रित्व आदि (तीन, होना आदि
अर्थात् तीन आदि संख्याओंके होनेको व्याख्यात समझना चाहि
कि अनेक विषय बुद्धिसहित एकत्वोंसे सिद्धि व अपेक्षाबुद्धि
नाशसे नाश होता है ॥

कहीं आश्रयके विनाशसे विनाश अर्थात् नाश होता है इस
निदर्शन यह है जब एकत्वके आधार द्रव्यके अवयवमें कर्म उत्
होता है तब एकत्वका सामान्यज्ञान उत्पन्न होता है १ कर्मसे अ
अवयवसे विभाग होता है अपेक्षाबुद्धिकी उत्पत्ति होती है २ उस
उसी कालमें विभागसे संयोगका नाश होता है । उसी कालमें द्वि
(दोहोना) उत्पन्न होता है ३ संयोगके नाश होनेसे द्रव्यका न
होता है व सामान्यबुद्धिकी उत्पत्ति होती है ४ उससे उसके पश्
जिसकालमें सामान्यबुद्धिसे अपेक्षाबुद्धिका नाश होता है उ
कालमें आश्रयके विनाशसे द्वित्वका नाश होता है यह विधान व
(मारने योग्य) व घातक (मारनेवाला)के पक्षमें यथार्थघटित हो
तेज व अंधकारके समान साथ न रहनेवाले पदार्थोंमें विरोध हो
दो द्रव्यके ज्ञानकी उत्पत्ति नहीं होसक्ती अर्थात् गुणबुद्धि हो
कालमें अपेक्षाबुद्धिके विनाशसे [illegible]
अपेक्षायुक्त जो यह ज्ञान होता है [illegible]
अभाव होनेका प्रसंग होता है अर्थात् ऐसा ज्ञान नहीं होता । य
लैंगिक (लिंग वा चिह्नसे उत्पन्न ज्ञान) के समान ज्ञानमात्रसे हो
माना जाय कि जैसे नहीं हुवा हुयेका लिंग है यह कहा है इसमें लिंग
अभावमें भी ज्ञानमात्रसे अनुमान होता है अर्थात् विरोधी लिंग
उदाहरणमें स्वरूपसे न हुये वर्षासे हुये वायु व मेघोंके संयोगका अनुम

ता है तथा गुणके नाश होनेमें अर्थात् द्वित्व गुणके न रहनेमेंभी
णके ज्ञानमात्रसे द्रव्यका प्रत्यय (बोध या ज्ञान) होगा तौ
शेष्यके ज्ञान होनेसे युक्त नहीं है क्योंकि विशेष्यज्ञान (विक्षेप-
के योग्य वा विशिष्टका ज्ञान) विना विशेषणके सम्बंधसारूप्यसे
लैंगिक ज्ञानके समानस्वरूपसे) नहीं होसक्ता जैसा कि सूत्रकारने
हा है कि समवायीकी शुक्लता व शुक्लताकी बुद्धिसे (शुक्लताके
ानसे) शुक्ल द्रव्यका ज्ञान होता है विशिष्ट व कार्यरूप द्रव्यमें
ह दोनों (विशेषणरूप शुक्लता व शुक्लताकी बुद्धि) कारणरूप
ते हैं और लिंगज्ञान भेदरहित उत्पन्न नहीं होता साध्य व
धन भेदसंयुक्तही होता है तिससे ऐसा दृष्टान्त विषम उपन्यास
विरुद्धस्थापन) है। शीघ्र उत्पन्न होनेसे भी दृष्टान्त यथार्थ नहीं
जैसे शब्दवान् आकाश है इसमें तीन (शब्द सम्बंध व आकाश)
रम ज्ञान उत्पन्न होते हैं ऐसेही द्वित्वज्ञानकी उत्पत्ति होती है
ससे यह दोषरहित यथार्थ उदाहरण है । जो यह कहा जाय
क वध्य व घातक पक्षमेंभी समान दोषहै और माना
ाय कि वध्य व घातक पक्षमें द्रव्यके ज्ञानकी उत्पत्ति
ोनेका प्रसंग न होगा कैसे न होगा द्वित्वसामान्यबुद्धि
ोनेके कालमें संस्कारसे अपेक्षाबुद्धिके नाशसे न होगा तो
त्तर यह है कि समूहज्ञानही (द्रव्यसमवेतताके साथ गुणका
ान वा विशिष्टज्ञानही) संस्कारका हेतु व कारण होता
आलोचनज्ञान (गुणज्ञानमात्र) नहीं होता इससे दोष
हीं। जो यह माना जाय कि वध्य व घातकके विरोधमें अनेक
ानोंका एक साथ होनेका प्रसङ्ग होगा तो यह यथार्थ नहीं है
क्योंकि एक साथ उत्पत्ति व नाशको नहीं प्राप्त होते हुये दोकी
एक साथ स्थितिका (दोका एक साथ रहना) प्रतिषेध (निषेध)
किया गया है । अर्थात् एक साथ अनेक ज्ञानके न होनेके वचनसे
(सूत्रकारके वचनसे) प्रतिषेध किया गया है इससे वध्य व

घातकके विरोधमें न दो ज्ञानोंकी एक साथ उत्पत्ति है और
दो विनाशको न मात होतेहुयोंकी स्थिति है।

इति संख्यावर्णनम्।

मानके व्यवहारके कारणको परिमाण कहते हैं वह अणु, म
हस्व व दीर्घ भेदसे चार प्रकारका होता है उनमेंसे (अणुआ
चारमेंसे) महत् (बडा) दोविध (प्रकार) का होता है नित्
अनित्य आकाश, काल, दिशा, आत्मामें परम, महत्व (मह
रिमाण होना) नित्य है त्र्यणुक आदिमें अनित्य है। ऐसेहि अ
भी दो प्रकारका है परमाणु व मनके परिमाणमें जिसको प
मण्डल कहते हैं नित्य है व द्व्यणुक मात्रमें अनित्य है
कुवल (बेर) आमलक (आँवला) बिल्व (बेल) आदिमें यद
यह महत्परिमाणवाले हैं तथापि दूसरेकी अपेक्षा अधिक हो
अभावसे अर्थात् न्यून होनेसे भाक्त (गौण) अणुका व्यव
दीर्घत्व व हस्वत्व उत्पाद्यमें (उत्पन्न करने योग्य अनित्यद्र
में) महत्व व अणुत्वके साथ एक पदार्थमें समवेत (सम
सम्बन्धयुक्त) होते हैं । समित् (जलानेकी लकडी) इक्षु (
या रूप) व बांस आदिमें यद्यपि यह साधारण दीर्घ है तथ
दूसरेकी अपेक्षा न्यून होनेसे भाक्त (गौण) हस्वका व्यव
होता है उक्त चारों प्रकारका अनित्य परिमाणसंख्या व प
माणप्रचय (परिमाण बढ़ने) का कारण है । तिसमें (प
माणमें) ईश्वरबुद्धिकी अपेक्षाकरके (ईश्वरबुद्धि का
अपेक्षापूर्वक) परमाणुओंके द्व्यणुकोंमें बहुत्व संख्या (ब
होनेकी संख्या) जो उत्पन्न होती है वह परमाणुओंके द्व्य
उत्पन्न त्र्यणुक आदिमें कार्यद्रव्यमें रूपआदिकी उत
होनेके समयमें अर्थात् रूपआदि उत्पन्न होनेके साथही उ
त्र्यणुकोंमें महत्व व दीर्घत्वको करती है । दो व बहुत महत् कारण
[illegible]में कारणोंके महत्वादि महत्वको उत्पन्न करते

बहुत्व महत्त्वको नहीं करता यह समानसंख्यावाले कारणोंसे उत्पन्न कार्यमें अतिशय (अधिक होना) देखनेसे विदित होता है। अर्थात् बहुत कारणोंसे उत्पन्न दो कार्योंमेंसे एकमें अतिशय देखनेसे विदित होता है। दो तूल पिण्डोंमें वर्तमान प्रचय (शिथिल संयोग) पिण्डका आरंभक (उत्पन्न करनेवाला) प्रशिथिल-संयोगकी अपेक्षा करनेवाला या अपेक्षासंयुक्त अथवा परस्पर दो पिण्डोंके अवयवोंके संयोगकी अपेक्षा करनेवाला (आवश्यकता रखनेवाला) दो तूलवाले द्रव्यमें महत्त्वको आरंभ करता है। बहुत्व व महत्वको आरंभ नहीं करता। यह समान संख्यापरिमाणवालोंसे उत्पन्नमें अतिशय होना देखनेसे विदित होता है द्वित्वसंख्या (दो होनेकी संख्या) दो व्यणुओंमें वर्तमान व्यणुकमें अणुत्व आरंभ करती है महत्त्ववान् अणुक आदिमें कारणोंके बहुत्व समानजातीयप्रचयोंसे दीर्घत्वकी उत्पत्ति होती है। व्यणुकके समान द्व्यणुकमें द्वित्वसंख्यासे हस्वत्वकी उत्पत्ती होती है जब त्र्यणुकके आदिमें वर्तमान महत्त्व व दीर्घत्वोंमें परस्पर एक दूसरेसे क्या भेद है और द्व्यणुकमें अणुत्व बहुत्वमें क्या भेद है महत्त्व व हस्वत्वमें परस्पर विशेष है अर्थात् भेद है क्योंकि महत् पदार्थोंमें दीर्घको लावो अर्थात् बडोंमें दीर्घको लावो अथवा दीर्घोमें महत् (बडे) को लावो ऐसा व्यवहार होता है ऐसेही अणुत्व व हस्वत्वका परस्पर भेद उनके जाननेवालोंको प्रत्यक्ष होता है या है। यह चार प्रकारके उत्पाद्य अनित्य परिमाण आश्रयके नाश होनेसे नाश होते हैं (नाशको प्राप्त होते हैं) ॥

इति परिमाणम् ।

अवधि (मर्यादा) को मानकर जो परिमित वस्तुको ज्ञान धारण करनेके व्यवहारका कारण होता है उसको पृथक्त्व कहते हैं वह एकद्रव्यमें व अनेकद्रव्यमें होता है पृथक्त्वका नित्य अनित्य होना संख्याके समान व्याख्यात समझना चाहिये।

उत्पन्नमात्र क्रियारहित द्वितन्तुक (दो तन्तुओंके पट-कारणरूप तन्तुसंयोगोंके साथ और जो कारण नहीं है वीरणसे वीरणके साथ) जो संयोग होता है वह एकसे कारणतन्तुका अकारणवीरणके साथ संयोगसे द्वितन्तुक पट-कार्यमें अकार्य वीरणमें होता है (उत्पन्न होता है) वैसेही जान लेना चाहिये दोसे जैसे तन्तु व आकाश दोनोंके संयोगोंसे द्वितन्तुक (दो तन्तुवाले पट) व आकाशका संयोग होता है व बहुतोंसे यथा तन्तुओं व तुरी (पट विननेका हथियारविशेष) के संयोगोंसे एक पट व तुरीका संयोग होता है एकसे दोकी उत्पत्ति कैसी होती है उसका निदर्शन यह है जैसे जब पार्थिव (पृथिवीद्रव्यवाले) व आप्य (जलद्रव्यवाले) दो अणुओंके संयोग होनेमें अन्य पार्थिव अणुके साथ पार्थिवका व अन्य आप्यअणुके साथ आप्यका (जलद्रव्यका) दोनोंके एकसाथ संयोग होते हैं तब दो संयोगोंसे पार्थिव व आप्यके द्व्यणुक एक साथ आरंभकिये जाते (उत्पन्न किये जाते) हैं तिससे जिसकालमें दोनों प्रकारके द्व्यणुकोंमें कारणगुणपूर्वक क्रमसे रूप आदिकोंकी उत्पत्ति होती है उसी कालमें दोनों परस्पर कारण व अकारणमें प्राप्त संयोगसे परस्पर कार्य व अकार्य दोनोंमें प्राप्त संयोग एक साथ (एक वारगी) उत्पन्न होतेहैं क्योंकि कारणसंयोगीहीके साथ कार्य अवश्य संयोगको प्राप्त होता है। इससे पार्थिव द्व्यणुक कारण संयोगोंसे कारणसंयोगीके द्वारा आप्य अणुके साथ व आप्य द्व्यणुक पार्थिव अणुके साथ संयोगको प्राप्त होता है अर्थात् संयुक्त होताहै। अब यदि यह शंका हो कि दोनों प्रकारके द्व्यणुकोंका जिनका एक दूसरेके कारणोंमें सम्बंध है उनका परस्पर संबंध कैसे होताहै तो संयोगसे उत्पन्न संयोगोंसे अर्थात् एक दूसरेके हुये संयोगसे उत्पन्न संयोगोंसे उनका परस्पर सम्बंध ... उत्पत्तिरहित नहीं होता अर्थात् विना उत्पन्न हुये

इतना भेद है . एकत्वआदिके समान पृथक्त्वआदिका अपर सामान्यभाव संख्यासे विशेषताको प्राप्त होता है यह संख्याके साथही व्यवहार होना प्रत्यक्ष वा ज्ञात होनेसे सिद्ध होता है "

इति पृथक्त्वम् ।

संयुक्तद्रव्योंके बोधका जो निमित्त (कारण) है वह है वा संयोग कहा जाता है और वह द्रव्य गुण व कर्म है । द्रव्यके आरंभमें निरपेक्ष (अपेक्षारहित) होता है विना अन्य पदार्थकी अपेक्षा आरंभक होता है व अपेक्षा रहितोंसे इस वचनसे ऐसा होता है यह सिद्ध परन्तु गुण व कर्मके आरंभमें संयुक्त समवायसे अग्निसे गुण होता है इस वचनसे (सूत्रकारके वचनसे) अपेक्षा होता है । अब संयोगका क्या लक्षण है कैविध (होता है यह वर्णन करते हैं । दो अप्राप्त पदार्थोंकी प्रा है वह तीन प्रकारका होता है अन्यतरकर्मज (उत्पन्न) उभयकर्मज (दोनोंके कर्मसे उत्पन्न) (संयोगसे उत्पन्न) इनमें अन्यतरकर्मज वह वालेसे क्रियारहितका संयोग होता है जैसे थुम्मा) का संयोग श्येन (बाज) से अर्थात् बाज होता है विभु (व्यापक) द्रव्योंका मूर्त होता है । विरुद्ध दिशाओंसे आतेहुयोंका उभयकर्मज है यथा मल्लों (पहलवानों) का भिडना संयोगज वह है जो उत्पन्नमात्रका अ उत्पन्न हुये क्रियारहितका कारण संयोगीओं णोंके साथ कारण व अकारण संयोगपूर्वक क प्राप्तसंयोग होता है और वह एकसे दोसे व है । एकसे प्रथम जैसे तन्तु व वीरण (तृणवि दितन्तुक (दो तन्तुओंका पट) व वीरण

अर्थात् उत्पन्नमात्र . क्रियारहित द्वितन्तुक (दो तन्तुवाले पट- का कारणरूप तन्तुसंयोगीके साथ और जो कारण नहीं है ऐसे वीरणमें वीरणके साथ) जो संयोग होना है वह एकमें कारणतन्तुका अकारणवीरणके साथ संयोगसे द्वितन्तुक पट- कार्यमें अकार्य वीरणमें होता है (उत्पन्न होता है) ऐसेही और जान लेना चाहिये दोसे जैसे तन्तु व आकाश दोनोंके संयोगसे . द्वितन्तुक (दो तन्तुवाले पट) व आकाशका संयोग होता है व बहुतोंसे यथा तन्तुओं व तुरी (पट विन- नेका हथियारविशेष) के संयोगोंसे एक पट व तुरीका संयोग होता है एकसे दोकी उत्पत्ति कैसी होती है उसका निदर्शन यह है जैसे जब पार्थिव (पृथिवीद्रव्यवाले) व आप्य (जलद्रव्यवाले) दो अणुओंके संयोग होनेमें अन्य पार्थिव अणुके साथ पार्थिवका व अन्य आप्यअणुके साथ आप्यका (जलद्रव्यका) दोनोंके एकसाथ संयोग होते हैं तब दो संयोगोंसे पार्थिव व आप्यके द्व्यणुक एक साथ आरंभकिये जाते (उत्पन्न किये जाते) हैं तिससे जिसकालमें दोनों प्रकारके द्व्यणुकोंमें कारणगुणपूर्वक क्रमसे रूप आदिकोंकी उत्पत्ति होती है उसी कालमें दोनों परस्पर कारण व अकारणमें प्राप्त संयोगसे परस्पर कार्य व अकार्य दोनोंमें प्राप्त संयोग एक साथ (एक बारगी) उत्पन्न होतेहैं क्योंकि कारणसंयोगीहीके साथ कार्य अवश्य संयोगको प्राप्त होता है। इससे पार्थिव द्व्यणुक कारण संयो- गोंसे कारणसंयोगीके द्वारा आप्य अणुके साथ व आप्य द्व्यणुक पार्थिव अणुके साथ संयोगको प्राप्त होता है अर्थात् संयुक्त होताहै।अब यदि यह शंका हो कि दोनों प्रकारके द्व्यणुकोंका जिनका एक दूसरेके कारणोंमें सम्बंध है उनका परस्पर संबंध कैसे होताहै तो संयोगसे उत्पन्न संयोगोंसे अर्थात् एक दूसरेके कारणोंमें हुये संयोगसे उत्पन्न संयोगोंसे उनका परस्पर सम्बंध है। संयोग उत्पत्तिरहित नहीं होता अर्थात् विना उत्पन्न हुये

नहीं होता । जो संयोग नित्य होता तो जैसे चार प्रकारके प
माण अनित्य कहकर पारिमण्डल्य (परमाणूका परिमाण) नि
यह पृथक् वर्णन कियाहै ऐसेही सूत्रकार अन्यतरकर्मज (अन
कर्मसे उत्पन्न)आदि संयोगोंको कहकर किसी प्रकारका संयोग नि
पृथक् वर्णन करते परन्तु ऐसा नहीं कहा इससे संयोग विना उ
हुये नहीं होता यह निश्चयकरना चाहिये । परमाणुओंसे आ
आदिकोंकी प्रदेशवृत्ति (एक देशमें होना) है यह अन्यतरक
संयोग है । विभु (व्यापक) द्रव्योंका परस्पर संयोग नहीं है क्यों
उनकी युत सिद्धिका अभाव है अर्थात् उनके सम्बंधरहित वा मे
रहित होनेकी सिद्धि नहीं होती सम्बंधरहित ही पृथक् पदार्थ
सम्बंध (योग) होना संयोग कहाजाता है । उक्त युतसिद्धि
विधिकी होती है एक दोनों वा दोनोंसे एकका पृथक्गतिम
होना दूसरे युत आश्रयोंमें (मिलेहुये आश्रयोंमें) आश्रयी होन
विनाश सब संयोगका वह जिस एक द्रव्यमें समवेत (सम
यिको प्राप्त) है उससे विभाग होनेसे होता है और कहीं आश्र
विनाशसे होता है। यथा दो तन्तुओंके संयोग होनेपर अन्यतन्
आरंभक अवयवमें कर्म उत्पन्न होता है उससे अन्य अवय
विभागकिया जाता है अर्थात् होता है विभागसे तन्तुके आ
भक (उत्पन्नकरनेवाले) संयोगका नाश होता है संयोगके नाश
तन्तुका नाश होता है तन्तुके नाशसे उसमें आश्रित अन्य तन्तु
संयोगका नाश होता है ॥

इति संयोगः ।

विभाग विभक्तोंके (विभागको प्राप्त हुये पदार्थोंके
ज्ञानका निमित्त (कारण) है और शब्द व विभागकाभी है
(कारण) है । जो प्राप्ति पूर्वमें रही है उसके न रहनेको अर्था
अप्राप्ति होजानेको विभाग कहते हैं । यह भी अन्यतरकर्म
उभय ग व विभागज तीनप्रकारका होता है । इनमेंसे अन्यतर

न व उभयकर्मजको (बाजका स्थाणुसे उडजाने व मल्लोंका एक
को छोडदेनेसे) संयोगमें कहे हुयेके समान समझना चाहिये।
विभागज वह दो प्रकारका होता है कारणके विभागसे व
ण व अकारणके विभागसे । कारणके विभागसे विभाग होना
है कि कार्यमें प्रविष्ट कारणमें उत्पन्न हुवा कर्म जब अन्य
यवसे विभाग करता है तब आकाश आदिदेशसे नहीं करता
जब आकाशसे विभाग करता है तब अन्य अवयवसे नहीं
ा यह निश्चय है इससे अवयवका कर्म अन्य अवयवमात्रसे
ागको आरंभ करता है और विभागसे •द्रव्यका आरंभक
त्पन्नकरनेवाला) संयोगका नाश होता है संयोगके नष्ट होनेमें
णके अभावसे कार्यका अभाव होता है इससे अवयवीका नाश
ा है किससे दो कारणों (अवयवों) में वर्तमान विभाग
के नाश होनेसे विशिष्ट (विशेपताको प्राप्त) कालकी अपेक्षा
के अर्थात् कार्यके नाश होनेहीके क्षणके अवधिका जो काल है
की अपेक्षा करिके अथवा स्वतंत्र अवयवको अपेक्षा करिके
संयुक्त आकाश आदि देशसे जिसमें क्रिया हुई है ऐसे
यवके विभागको आरंभ करता है। क्रियाकारणके अभावसे
भागके कारण क्रियाके अभावसे) उत्तर संयोग उत्पन्न न होनेमें
ागके आरंभ होनेके कालका उपभोग न होने अर्थात् अंत न
के प्रसङ्गसे क्रियारहित अवयवोंके विभागको उत्पन्न नहीं करता
उसी अवयवका कर्म जिससे अन्य अवयवसे विभाग होता
उसके आरंभका काल व्यतीत होजानेसे आकाशआदि देशसे
ाग नहीं करता है परन्तु प्रदेशान्तरके (अन्यदेशके) संयो-
करता है क्योंकी संयोग (उत्तरसंयोग) न किये हुये
के कालके व्यतीत होनेके अभावसे कर्मका नाश नहीं हो
ा व कर्म नित्य नहीं होता उत्तर संयोगमात्रसे नष्ट होजाता
इससे विभागसे आकाशआदि देशसे विभाग होता है।
ण व अकारणके विभागसे विभाग कैसे होता है उसका

दृष्टान्त यह है जब हाथमें उत्पन्नहुवा कर्म अन्य अवयवसे विभाग करतेहुये आकाशआदि देशोंसे विभागोंको आरंभ करिकै अन्य प्रदेशोंमें संयोगको आरंभ करता है तब वह कारण व अकारणके विभाग जिस दिशामें कर्मकार्यके अभिमुख होता है उस दिशाकी अपेक्षा करिकै कार्य व अकार्यके विभागोंको आरंभ करते हैं उसके अनन्तर (पश्चात्) कारण व अकारणके संयोग कार्य व अकार्यके संयोगोंको उत्पन्न करते हैं (शंका) यदि कारण विभागसे अनन्तर कार्यविभागकी उत्पत्ति व कारणसंयोगसे अनन्तर कार्यसंयोगकी उत्पत्ति होती है तो अवयव व अवयवीमें युतसिद्धिदोष (मिलेहुयेकी सिद्धि होनेका दोष) होनेका प्रसङ्ग होगा (उत्तर) दोष नहीं प्राप्तहोता। युतसिद्धिके ज्ञान न होने वा न समझनेसे ऐसा भ्रम होता है दोनोंका अथवा एकका पृथक् गतिमान होना (पृथक् प्राप्त होना) नित्य द्रव्योंकी युतसिद्धी है व युत (पृथक् आश्रयोंमें) समवाय (नित्य सम्बंध विशेष) होना अनित्योंकी युतसिद्धि है यथा त्वच (चर्म वा चमडा) में इन्द्रिय व शरीरका पृथक्गतिमान होना (पृथक् प्राप्त) होना नहीं है युतआश्रयोंमें (मिलेहुये आश्रयोंमें) समवाय है इससे परस्परसे संयोगकी सिद्धि है। अणु व आकाशमें अन्य आश्रय न होनेपरभी अन्यतरके (अणुके) पृथक् गतिमान होनेसे संयोग व विभाग सिद्धहोते हैं अनित्य तन्तु व पटमें अन्य आश्रय न होनेसे परस्पर संयोग व विभाग होते हैं। दिशा आदिके पृथक्गतिमान होनेके अभावसे एक दूसरेमें संयोग होनेका अभाव है। सब विभागोंका क्षणिक होनेसे व उत्तर संयोग होनेतक संभव होनेसे नाशहोता है। संयोगके समान नहीं

। संयुक्त प्रत्ययके समान विभक्तोंके (विभागको प्राप्तहुयोंके)
१५ अनुवृत्ति (फिर वही वा वैसाही ज्ञान होना) न होनेसे
१६ दो अवयवोंका विभाग होता है उनहीके संयोगसे (नि-

) नाश होता है (नाशको प्राप्त होता है) इससे संयोगतक
ककी अवधि होनेसे क्षणिक है।
कहीं आश्रयके विनाशसे नाशको प्राप्त होताहै जैसे जब
तन्तुकका (दोतन्तुवाले द्रव्यपटका) कारण जो अवयव है
सके अंश (अवयव) में उत्पन्नकर्म अन्य अवयवसे विभाग
रंभ करता है तभी अन्यतन्तुमें कर्म उत्पन्न होता है। विभागसे
ो अन्य तन्तुके आरंभक संयोगका नाश होता है और तन्तुके
अंशे अन्यतन्तुसे विभाग किया जाता है अर्थात् विभाग होता
यह एक काल है २ उसके पश्चात् जिस कालमें विभागसे
तुके संयोगका नाश होता है उसी कालमें संयोगके नाशसे
तुका नाश होता है ३उसके नष्ट होनेमें उसमें आश्रित जो अन्य
तुसे विभाग है उसका नाश होता है ४ (शंका) जो ऐसा
गा तो कारणके (अन्य तन्तुके) विभाग न होनेसे उत्तर विभाग
तन्तु व आकाशका विभाग) न होनेका प्रसंग होगा और उससे
न्य प्रदेशके संयोगका अभाव होगा। इससे अर्थात् विरोधी
गके अभावसे वा संभव न होनेसे कर्मका चिरकालअवस्थायी
ना (बहुत कालतक बने रहना) व नित्य द्रव्यमें समवेत
समवायपुक्त) का नित्य होना यह दोष होगा इसका उदाहरण
। निदर्शन यह है कि जब द्व्यणुकके आरंभक परमाणुमें उत्पन्न
में अन्य अणुओंसे विभाग करता है तभी अन्य अणुमें कर्म
ताहै १ उसके पश्चात् जिस कालमें विभागसे द्रव्यके आरंभक
योगका नाश होता है उसी कालमें अणुके कर्मसे द्व्यणुकके दोनों
णुओंका विभाग होता है २. उसके पश्चात् जिसकालमें
भागसे द्व्यणुकके अणुओंके संयोगका नाश होता है उसी कालमें
योगके नाश होनेसे द्व्यणुकका नाश होता है ३ उसके नष्टहोनेमें
समें आश्रित जो द्व्यणुकके अणुका विभाग है उसका नाश होता
४ उसके पश्चात् विरोधी गुण संभव न होनेसे कर्मका नित्यत्व
सद्ध होता है (उत्तर) नित्यत्व नहीं होता तन्तुके अन्य

नाश होनेसे परत्व अपरत्वका नाश होता है। परत्व अपरत्वमें अपेक्षाबुद्धि निमित्तकारण १ संयोग असमवायिकारण २ द्रव्य समवायि कारणहै ३ इनमेंसे प्रथम अपेक्षाबुद्धि निमित्तकारणके नाशसे नाश होनेका निदर्शन यह है कि उत्पन्न हुये परत्वमें १ सामान्य बुद्धि (परत्वका सामान्यज्ञान) उत्पन्न होतीहै तब उससे अपेक्षाबुद्धिके नाश होनेकी अवस्था व सामान्यज्ञान व दोनोंके सम्बंधोंसे परत्वगुणके बुद्धि (ज्ञान) की उत्पन्न होनेकी अवस्था होनेका एक कालहै अर्थात् यह तीनों एकही कालमें होते हैं उससे (सामान्यबुद्धिसे) अपेक्षाबुद्धिका नाश होताहै व गुण बुद्धिकी उत्पत्ति होती है उससे (उसके पश्चात्) अपेक्षाबुद्धिके नाशसे गुणके नाशवान होनेकी अवस्था, गुणका ज्ञान व दोनोंके सम्बंधोंसे द्रव्यबुद्धि उत्पन्न होनेकी अवस्था यह एककाल (क्षण) है अर्थात् यह प्रथमकी अपेक्षा द्वितीय क्षणमें होता है उसके पश्चात् तृतीयक्षणमें द्रव्यबुद्धिकी उत्पत्ति होती है और गुणका (परत्वका) नाश होता है ४ ॥ संयोगके नाशसेभी परत्वका नाश होता है केसे नाश होता है उसका निदर्शन यह है जैसे अपेक्षाबुद्धि होनेके कालहीमें परत्वके आधारपिण्डमें कर्म उत्पन्न होता है १ उस कर्मसे दिशा व पिण्डका विभाग होता है अपेक्षाबुद्धिसे परत्वकी उत्पत्ति होतीहै यह एककाल (एकक्षण) है अर्थात् दोनोंका होना एकक्षणमें होता है २ उससे सामान्यबुद्धिकी उत्पत्ति होती है दिशा व पिण्डके संयोगका नाश होता है ३ उसके पश्चात् जिसकालमें गुणबुद्धि (गुणकी बुद्धि) उत्पन्न होती है उसी कालमें दिशा व पिण्डके संयोगके विनाशसे गुणका (परत्वका) विनाश होता है ४ द्रव्यके नाशसेभी नाशको प्राप्त होता है केसे उसका उदाहरण यह है जैसे परत्वके आधारद्रव्यके अवयवमें कर्म उत्पन्न होता है वह जिस कालमें अवयवसे (अन्य अवयवसे) विभाग करताहै उसी कालमें अपेक्षाबुद्धि उत्पन्न होती है २ उस विभागसे जिस कालमें संयोगका नाश होता है उसी कालमें परत्व

म होता है ३ उसके पश्चात् संयोगके विनाशसे द्रव्यका विनाश
। है व सामान्यबुद्धिकी उत्पत्ति होती है ४ उसके (द्रव्यके)
शसे उसमें आश्रित गुणका विनाश होता है ५ द्रव्य व अपेक्षा-
दोनोंके एकसाथ नाश होनेसेभी परत्वका नाश होता है ४
उदाहरण यह है जैसे जब परत्वके आधार द्रव्यके अवयवमें
त्व जिसमें है ऐसे द्रव्यके अवयवमें) कर्म उत्पन्न होता है
ो अपेक्षाबुद्धि उत्पन्न होती है ५ और कर्मसे अवयवसे वि-
ा होता है परत्वकी उत्पत्ति होती है यह एक काल है २ उसके
ात् जिसकालमें विभागसे संयोगका नाश होता है उसी का-
ं सामान्यबुद्धि उत्पन्न होती है ३ उसके पश्चात् संयोगके
शसे द्रव्यका नाश होता है व सामान्यबुद्धिसे अपेक्षाबुद्धिका
श होता है यह एक काल है ४ फिर इसके पश्चात् द्रव्य व अ-
ाबुद्धि दोनोंके एकसाथ नाश होनेसे परत्वका नाश होता है ५
मवायिकारण द्रव्य व असमवायिकारण संयोग दोनोंके नाशसे
परत्वका नाश होता है जैसे जब द्रव्यके अवयवमें कर्म उत्पन्न
ता है १ वह अन्य अवयवसे विभाग करता है उसी कालमें (वि-
ाग करनेके कालमें) पिण्डमें कर्म व अपेक्षाबुद्धि दोनोंकी एक साथ
त्पत्ति होतीहै२उसके पश्चात् जिस एककालमें परत्वकीउत्पत्ति होतीहै
सी कालमें विभागसे द्रव्यके आरंभक संयोगका नाश होता है और
पिण्डके कर्मसे दिशा व पिण्डका विभाग होता है ३ उसके पश्चात्
जिस कालमें सामान्यबुद्धि उत्पन्न होती है उसी कालमें संयोग
के विनाशसे पिण्डका विनाश होता है और विभागसे दिशा व
पिण्डके संयोगका विनाश होता है ४ उसके पश्चात् गुण बुद्धि
होनेके कालमें पिण्डके संयोगके नाशसे परत्वका नाश होता है ५

परत्वके आधारमें कर्म उत्पन्न होता है १ उसके पश्चात् जिस काल में परत्वकी सामान्यबुद्धि उत्पन्न होतीहै उसी कालमें पिण्डके कर्मसे दिशा व पिण्डका विभाग होता है२ उसके पश्चात् सामान्य बुद्धिसे अपेक्षाबुद्धिका विनाश होता है और विभागसे दिशा व पिण्डके संयोगका नाश होता है यह एक काल (एकक्षण) में होते हैं ३ इसके पश्चात् संयोग अपेक्षाबुद्धिके विनाशसे परत्वका विनाश होता है ४ समवायि, असमवायि व निमित्त तीनों कारणों के एक साथ नाश होनेसेभी नाश होता है ७ कैसे नाश होता है इसका वर्णन यह है जैसे जब अपेक्षाबुद्धि उत्पन्न होती है तब पिण्डके अवयवमें कर्म होता है १ उसके पश्चात् जिस कालमें अन्य अवयवसे विभाग किया जाता है वा होता है व परत्वकी उत्पत्ति होती है उसी कालमें पिण्डमें कर्म होता है २ उससे विभागसे पिण्डके आरंभक संयोगका नाशहोता है और पिण्डके कर्मसे दिशा व पिण्डका विभाग होता है व सामान्यबुद्धिकी उत्पत्ति होतीहै यह एक काल है अर्थात् यह सब एक कालमें होते हैं इन सबका एक काल है ३ इसके पश्चात् संयोगके विनाशसे पिण्डका विनाश होता है व विभागसे दिशा व पिण्डके संयोगका नाश होता है व सामान्यज्ञानसे अपेक्षाबुद्धिका नाश होता है ४ इस प्रकारसे एक साथ समवायि, असमवायि व निमित्त तीनों कारणोंके विनाशसे परत्वका विनाश होता है ५।

इति परत्वम्।

बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान व प्रत्यय यह एकही अर्थके वाचक शब्द हैं अर्थात् इन शब्दोंका एकही अर्थ है प्रत्येक अर्थमें नियत होनेसे व अर्थोंके (पदार्थोंके) अनन्तर होनेसे बुद्धि अनेक प्रकारकी होती है परन्तु संक्षेपसे दो प्रकारकी है एक विद्या दूसरी अविद्या इनमें से अविद्याके चार भेद हैं संशय, विपर्यय, स्वप्न व अनध्यवसाय ... विशेषधर्म ज्ञात (जाने हुये) हैं ऐसे स्थाणु (लकड़ीका

थुंभा व ठूंठ.) व पुरुष दोनोंके सादृश्य (सम होना) मात्र देखनेसे व दोनोंके विशेष धर्मोंके स्मरणसे व विशेषके ज्ञान न होनेसे दोमें-से कौन है ऐसी दोनों कोटिमें आलम्बन करनेवाले विचारको संशय कहते हैं वह दो प्रकारका होता है एक अन्तस्संशय दूसरा बहिस्संशय । अन्तस्संशयका निदर्शन यह है यथा कोई ज्योतिषका जाननेवाला चन्द्रग्रहण आदिका होना कहे परन्तु यथार्थज्ञान वा निश्चय न होनेसे उसके मनमें संशय हो कि सत्य होगा अथवा मिथ्या होगा इत्यादि व बहिस्संशय (बाहर देखे हुये पदार्थमें संशय होना) भी दो प्रकारका होता है एक प्रत्यक्षविषयमें दूसरा अप्रत्यक्षविषयमें । अप्रत्यक्षविषयमें संशय होना वह है जो साधारण लिङ्ग (चिह्न) के देखनेसे दोनों कोटिमें विशेष धर्मके स्मरण होनेसे व विशेषधर्मके ज्ञान न होनेसे संशय होता है यथा वनमें विषाण (सींग) मात्र देखनेसे गौ है अथवा गवय (नीलगाव) है यह संशय होता है व प्रत्यक्षविषयमें जैसे स्थाणु व पुरुषके समान ऊंचाईमात्र देखनेसे वक्र (टेढा) व कोटर (खोह) आदि होनेका

[illegible]
दोनोंके विशेषधर्मोंके विचारमें दोनों तरफ खिचता हुवा आत्माका ज्ञान इस प्रकारसे हिंडोलाके समान चलायमान होता है कि यह स्थाणु है या पुरुष है इत्यादि । विपर्ययभी प्रत्यक्ष व अनुमान विषयमें होता है प्रथम प्रत्यक्षविषयमें विपर्यय होनेका लक्षण व उदाहरण वर्णन किया जाता है जिसके इन्द्रियमें कफ पित्त वातका दोष प्राप्त होता है उसको वर्तमान अवस्थामें अयथार्थ देखनेसे इन्द्रियके साथ यथार्थ संयोग न प्राप्त हुये विषयके ज्ञानसे उत्पन्न हुये संस्कारकी अपेक्षासे व आत्मा व मनके संयोगसे व विशेषके ज्ञान न होनेसे अनेक विशेष धर्म जिनके ज्ञान हैं ऐसे दो पदार्थोंका भ्रमरूप ज्ञान अर्थात् जिसमें जो धर्म नहीं है उसमें

उसका ज्ञान होना विपर्यय है जैसे गौमें घोडा है ऐसा ज्ञान होने आदिमें प्रत्यक्ष न होनेमेंभी प्रत्यक्ष होनेका अभिमान होता है जैसे मेघोंकी घटासे अंधकारको प्राप्त समुद्रके समान अचल सुरमाके चूर्ण वा कज्जलके पुंज (ढेर) के समान श्याम आकाश रात्रिका अंधकार है यह वा ऐसा ज्ञात होता है। अनुमान विषयमें जैसे भाफ (जलाशयसे उठी हुई भाफ) वा धूल धूमके समान देखकर अग्निका अनुमान होना वा करना गवय (नीलगाव) के सींग मात्र देखनेसे गौका अनुमान होना वेदत्रयी (ऋग्यजुस्साम वेद) के विपरीत नास्तिकोंके ग्रंथोंमें यह श्रेय (कल्याण) करनेवाले हैं ऐसा मिथ्या ज्ञान होना विपर्यय है तथा शरीर इन्द्रिय व मनको आत्मा मानना अनित्य कार्योंको नित्य जानना विना कारण कार्यकी उत्पत्ति जानना वा मानना हितउपदेशमें अहित समझना विपर्यय ज्ञान है । अनध्यवसाय (निश्चय न होना) भी प्रत्यक्ष व अनुमानविषयमें होता है । उनमेंसे प्रथम प्रत्यक्ष विषयमें होनेका वर्णन यह है कि जानेहुये पदार्थोंमें वा न जानेहुये पदार्थोंमें व्यासङ्ग होनेसे अर्थात् सामान्य व विशेषभावसे ज्ञान होने व न होनेके मेलसे अथवा पदार्थके ज्ञान न होनेसे यह क्या है ऐसा ज्ञान होना मात्र अनध्यवसाय है जैसे वाहीकको (जाति भेद है उसको)पनस(कटहर) आदिमें अनध्यवसाय होता है उनमें (कटहर आदिमें) सत्ता (होना) द्रव्यत्व(द्रव्य होना) पृथिवीत्व (पृथिवी होना) वृक्षत्व (वृक्ष होना) रूपवान होने शाखा आदिकी अपेक्षासे अध्यवसायही (निश्चयही) है व कटहर होनाभी कटहरोंमें पूर्वमें देखेहुयेके समान वही पदार्थ होना व आमआदिकोंसे भिन्न होना प्रत्यक्षही है के उपदेश न होनेसे विशेप नामका निश्चय नहीं होता है । अनुमानविपयमेंभी अनध्यवसाय होता है जैसे किसी नारिकेल द्वीपवासीको सास्ना (गलकम्वल) मात्र देखनेसे यह कौन प्राणी होगा ऐसा अनध्यवसाय होता है।जिसकी सव इन्द्रियाँ शान्त होगई हैं मन लीन होगया है उसको इन्द्रियके द्वारा ज्ञान होनेके समान जो मानस (मन

सम्बंधी) अनुभव होता है वह स्वमज्ञान है जैसे जब बुद्धिपूर्वक आत्माके शरीरव्यापारसे दिनमें श्रमको प्राप्त प्राणीका मन रात्रिमें विश्रामके लिये अथवा आहारपरिणामके लिये अदृष्टकारणसे हुये प्रयत्नकी अपेक्षासे, अन्तःकरणके सम्बंधसे व मनमें हुये क्रियाओंके प्रबंधसे अन्तरहृदयमें इन्द्रियोंसे रहित आत्माके प्रदेशमें निश्चल स्थिर होता है तब वह प्रलीनमनस्क (प्रलीनवाला) कहा जाता है मनके लीन होनेमें उसकी सब इन्द्रियाँ शान्त होजाती हैं उस अवस्थामें प्रवाहरूपसे प्राण व अपानके सन्तानकी प्रवृत्ति होनेमें आत्मा व मनके संयोगविशेषसे स्वप्ननामक संस्कारसे विषयोंके न होनेमेंभी इंद्रियोंसे ज्ञान होनेके समान प्रत्यक्षाकार ज्ञान उत्पन्न होता है । वह स्वप्न तीन प्रकारका होता है संस्कारके प्रबल होनेसे, धातुके दोषसे व अदृष्टसे संस्कारकी प्रबलतासे जैसे कामी वा क्रोधी जब जिस अर्थको आदर करता (अभिलाषा करता) चिन्तन करते हुये सोता है तब वही चिन्तासन्तति प्रत्यक्षाकार (प्रत्यक्षरूप) होती है । धातुदोषसे जैसे वातप्रकृतिवाला अथवा वातरोगसे दूषित आकाश आदिका गमन (उड़ना) देखता है और पित्तप्रकृतिवाला अथवा पित्तरोगसे दूषित अग्निका प्रवेश करना व सोनेके पर्वत आदि देखता है व कफप्रकृतिवाला अथवा कफविकारसे दूषित नदी, समुद्र व वरफ आदिको देखता है अदृष्टसे जैसे जो अपनेको अनुभूत है व अनुभूत नहीं है और जो ज्ञात है वा जो ज्ञात नहीं है इनमें शुभसूचक हाथीका चढ़ना छत्रका प्राप्त होना आदि देख परता है यह सब संस्कार व धर्मसे होता है और इसके विपरीत तेलका लगाना ऊंटपर चढ़ना आदि स्वप्नमें देखना संस्कार व अधर्मसे होता है जो अत्यन्त अप्रसिद्धोंमें (अज्ञातपदार्थोंमें) स्वप्न ज्ञात होता है वह अदृष्टमात्रसे होता है स्वप्नान्तिक ज्ञान (स्वप्नमें हुये अनुभवके संस्कारसे उत्पन्न ज्ञान) यद्यपि जिसकी सम्पूर्ण इंद्रियां शान्त होगयीं हैं स्वप्नअवस्थाको प्राप्त होता है उसीको है तथापि

व्यतीत हुये ज्ञानप्रबंधका वर्त्तमानक्षणमें ज्ञान होनेसे वह स्मृति ही है इसप्रकारसे चार प्रकारकी अविद्या है प्रत्यक्ष लैंगिक स्मृति व आर्ष भेदसे वा नामसे विद्या (यथार्थ ज्ञान) भी चार प्रकारका है उनमेंसे अक्ष (इंद्रिय) में प्राप्त होकर इंद्रियद्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं घ्राण (नासिका) रसना (जिह्वा) चक्षु (नेत्र) त्वक् (चर्म) श्रोत्र (कर्ण) व मन यह अक्ष (इंद्रिय) हैं इनका पदार्थोंके साथ संयोग होनेसे द्रव्य आदि पदार्थोंमें प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है। द्रव्य, शरीर, इन्द्रिय व विषय रूप तीन प्रकारका होताहै।महत्पदार्थोंमें (महान वा स्थूल पदार्थोंमें अनेक द्रव्यवत्त्व (अनेक द्रव्यवान होना) रूप प्रकाश, चतुष्टय के सन्निकर्षसे अर्थात् सामान्य,विशेष, द्रव्य, गुण व कर्म इन चारों को सन्निकर्षसे धर्मआदिके समग्र होनेमें सामान्य, विशेष, द्रव्य, गुण व कर्म विशेषणोंकी अपेक्षा रखनेवाले आत्मा व मनके सन्निकर्षसे (व्यवधानरहित संयोगविशेषसे) स्वरूपका ज्ञान होना मात्र प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है यह चाक्षुप (नेत्रसम्बंधी) प्रत्यक्षके अभिप्रायसे कहा है इसका निदर्शन यह है यथा यह कहनेमें कि विपाणी(सींगवाली) शुक्ला (शुक्लरंगवाली) गौ(गाय) जाती है, द्रव्यत्व अर्थात् गोत्व (गौहोना) सामान्य(जाति) है परन्तु अन्यजातियोंकी अपेक्षा विशेषहै इससे सामान्य विशेषहै अर्थात् सामान्य विशेष होनेके विशेषणयुक्तहै व विपाण द्रव्य, शुक्ल गुण, व चलना कर्म यह विशेषण हैं इन चारों विशेषणोंकी अपेक्षायुक्त आत्मा वमनके सन्निकर्षसे गौका प्रत्यक्ष होताहै।रूप,रस,गंध,स्पर्शोंमें अनेक द्रव्यवान द्रव्यके समवायसे अपनेमें प्राप्त विशेषसे (विशेष धर्मसे) अपने आश्रयके सन्निकर्षसे नियत इन्द्रिय है निमित्त जिसका ऐसा ज्ञान उत्पन्न होता है श्रोत्रसमवेत (कर्णके साथ समवायसम्बंधयुक्त) ... तीनके सन्निकर्षसे अर्थात् द्रव्य, समवाय, शब्दत्व आदि ...मवाय व श्रोत्र इन्द्रियसमवाय इन तीनोंका मनके साथ सन्नि... होनेसे श्रोत्रइन्द्रियहीसे प्रत्यक्ष होता है । संख्या, परिमाण,

[illegible] प्राप्त) युक्तोंको अर्थात् ध्यानमें [illegible]
रहता है ऐसे योगीजनोंको योगसे उत्पन्न धर्मसे अनुग्रहको प्राप्त हुये मनके द्वारा अपने आत्मा, परके आत्मा, आकाश, दिशा, काल, वायु, परमाणु, मन द्रव्योंमें व इन सबमें समवेत गुण, कर्म, सामान्य व विशेषोंमें व समवायमें अव्यपदेश्य (कथन योग्य नहीं) भीतर, बाहर सब देशमें यथार्थरूप साक्षात्कार ज्ञान उत्पन्न होता है व वियुक्त योगियोंका अर्थात् जिनको समाधिके प्रभावसे विना-ध्यानके सब साक्षात्कार होता है उनका उक्त चतुष्टयके सन्निकर्षसे योगसे उत्पन्न हुये धर्मके सामर्थ्यसे सूक्ष्म व्यवहित, (आड़में वा ओटमें प्राप्त) विप्रकृष्ट (दूरदेशमें प्राप्त) पदार्थोंमें प्रत्यय होना रूपज्ञान उत्पन्न होता है। उसमें द्रव्य,गुण, कर्म, सामान्य व विशेषोंमें स्वरूपमात्रका देखना प्रत्यक्ष प्रमाण है। द्रव्य आदिपदार्थ प्रमेय हैं आत्मा प्रमाता (प्रमाण करनेवाला) है द्रव्य आदि विषयक ज्ञान अर्थात् द्रव्य होनेआदिका विशेष प्रकारका ज्ञान होना प्रमिति है। सामान्य व विशेषके ज्ञान उत्पन्न होनेमें विभाग रहित स्वरूपमात्रका देखना वा जानना प्रत्यक्ष प्रमाण है उसमें अन्य प्रमाण नहीं है क्योंकि वह किसी प्रमाणसे फलरूप नहीं है स्वतः सिद्ध है अथवा सब पदार्थोंमें चतुष्टयके सन्निकर्षसे जो अवितथ (यथार्थ) अव्यपदेश्य (कथन योग्य नहीं) ज्ञान उत्पन्न होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है द्रव्यआदि पदार्थ प्रमेय हैं आत्मा प्रमाता है

व्यतीत हुये ज्ञानसंबंधका वर्त्तमानक्षणमें ज्ञान होनेसे वह स्मृति ही है इसप्रकारसे चार प्रकारकी अविद्या है प्रत्यक्ष लैंगिक स्मृति व आर्ष भेदसे या नामसे विद्या (यथार्थ ज्ञान) भी चार प्रकारकी है उनमेंसे अक्ष (इंद्रिय) में प्राप्त होकर इंद्रियद्वारा जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसको प्रत्यक्ष कहते हैं घ्राण (नासिका) रसना (जिह्वा) चक्षु (नेत्र) त्वक् (चर्म) श्रोत्र (कर्ण) व मन यह अक्ष (इंद्रिय) हैं इनका पदार्थोंके साथ संयोग होनेसे द्रव्य आदि पदार्थोंमें प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है । द्रव्य, शरीर, इन्द्रिय व विषय रूप तीन प्रकारका होताहै।महत्पदार्थोंमें (महान वा स्थूल पदार्थोंमें अनेक द्रव्यवत्त्व (अनेक द्रव्यवान होना) रूप प्रकाश, चतुष्टय के सन्निकर्षसे अर्थात् सामान्य,विशेष, द्रव्य, गुण व कर्म इन चारों को सन्निकर्षसे धर्मआदिके समग्र होनेमें सामान्य, विशेष, द्र गुण व कर्म विशेषणोंकी अपेक्षा रखनेवाले आत्मा व मनके कर्षसे (व्यवधानरहित संयोगविशेषसे) स्वरूपका ज्ञान मात्र प्रत्यक्ष उत्पन्न होता है यह चाक्षुप (नेत्रसम्बंधी) अभिप्रायसे कहा है इसका निदर्शन यह है यथा यह द विषाणी(सींगवाली) शुक्ला (शुक्लरंगवाली) गौ(गाय

लिंग इनका लिंग है ऐसाही औरभी जानना चाहिये।
प्रकारका लैंगिक ज्ञान अर्थात् अनुमान इसका यह है ऐसे
संबंधमात्रके ज्ञानसे सूत्रकारके वचनसे सिद्ध होताहै या
दृष्ट है। वह लैंगिक ज्ञान दोविधका होताहै दृष्ट व सामान्य-
दृष्ट जो ज्ञात पदार्थ व साध्य पदार्थके जातिमें कुछ भेद न
होनेमें अनुमान होता है यह अदृष्ट है यथा यह जानकर कि सा-
स्ना (गलकम्बल) केवल गौमें होताहै देशान्तरमें (अन्य
देशमें) सास्नामात्र देखनेसे यह गौ है यह ज्ञान होताहै व
प्रसिद्ध (ज्ञातपदार्थ) व साधर्म्य अत्यन्त जाति भेद होनेमें जो
लिंगसे (लिंगद्वारा) अनुमेय धर्मके सामान्य (जाति) की
अनुवृत्तिसे (वैसाही होनेके ज्ञानसे) अनुमान होताहै वह सामा-
न्यतोदृष्ट है। यथा कर्षक (खेत करनेवाला) वनिक (वनिया)
व राजाके पुत्रोंकी वृत्तिकी सफलता जानकर वा देखकर यह
अनुमान होताहै कि ऐसेही वर्णाश्रमियोंके कर्म व अनुष्ठानके
फलकी प्राप्ति होगी अर्थात् दृष्ट (प्रत्यक्ष) प्रयोजनको लेकर
या मानकर धर्ममें प्रवर्तमानोंके फलका अनुमान
होताहै । अनुमानमें लिंगदर्शन (चिह्नका देखना वा
जानना) प्रमाण है अग्निका ज्ञान प्रमिति है अथवा अग्निका
ज्ञानही प्रमाण है व अग्निमें गुण व दोषोंका माध्यस्थ दर्शन
(यथार्थ भेदरूपसे देखना) प्रमिति है जो प्रमाण अपने निश्चित
(पूर्वनिश्चित) अर्थमें होताहै वह अनुमान है समान विधि
होनेसे (अनुमानहीके समान विधि होनेसे) शब्दआदिकोंका
भी अनुमानहीमें अन्तर्भावहै अर्थात् शब्दआदिहीके अन्तर्गत है
या अन्तर्गत समझना चाहिये जिसने व्याप्तिको ग्रहण किया है
वा जाना है। ऐसे अनुमान करनेवालेको लिंग देखनेसे व प्रसि-
द्धि (व्याप्ति) के अनुस्मरण (पूर्वके समान स्मरण) से अतीन्द्रिय
(अप्रत्यक्ष) पदार्थमें अनुमान होताहै ऐसेही शब्दआदिमेंभी अनु-
मान होताहै। श्रुतिस्मृतिरूप होनेपरभी वेदवक्ताके प्रामाण्य-

व माध्यस्थसे (मध्यस्थ होनेसे)गुण व दोपका देखना प्रमिति है लिङ्ग (चिह्न)के देखने वा जाननेसे जो ज्ञान उत्पन्न होता है। उसको लैङ्गिक कहते हैं। जो अनुमेय पदार्थ (अनुमान करने योग्य पदार्थ)के साथ सम्बंधको प्राप्त हो अर्थात् देशविशेष व काल विशेपमें जिसका अनुमेयके साथ सम्बंध देखाजाय वा जाना-जाय व अनुमेयही सहित अन्यत्र सबदेशमें वा एक देशमें ज्ञात हो विना उसके (अनुमेयके)न हो वह अप्रत्यक्ष पदार्थमें अनुमानका हेतु अर्थात् अप्रत्यक्ष पदार्थका जनानेवाला लिङ्ग होता है वा कहा जाता है। और जो तीन रूप वा विशेपणसे कहेगये लक्षणसे एक धर्मसे अथवा दो धर्मोंमें विपरीत व विरुद्ध वा असिद्ध (अज्ञात) वा संदिग्ध (संदेहयुक्त) हो वह अनुमेयके ज्ञान प्राप्त होनेमें वा ज्ञान प्राप्त होनेके लिये लिङ्ग नहीं होता है। जैसा कि महर्षि सूत्र-कारने यह कहा है कि अप्रसिद्ध (अज्ञात) अनपदेश (हेत्वाभास) है व संदिग्ध (संदेहयुक्त) अनपदेश है। लिङ्गका निदर्शन यह है यथा जहां धूम होता है वहाँ अग्नि होती है अग्निके अभावमें धूम नहीं होता अर्थात् विना अग्निके धूम नहीं होता इस प्रकारसे जिस अनुमान करनेवालेको व्याप्तिरूप सम्बंधका ज्ञान होताहै उसको संदेह रहित धूम देखनेसे व सहचार (साथ होनेका सम्बंध) स्मरण करनेसे पश्चात् अग्निका निश्चय होताहै, इस प्रकारसे देशकालसहित अनुमेयका लिङ्ग होताहै। शास्त्रमें जो इसका यह कारण है इत्यादि सम्बंधसे कार्य, कारण, संयोगि, विरोधि व समवायि यह लैङ्गिकके भेद ग्रहण कियाहै वह केवल निदर्शनके लिये कहा है यह निश्चय करनेके लिये नहीं कहा कि इतनेही भेद हैं क्योंकि उक्तभेदोंसे अधिक व भिन्नमेंभी लिङ्गका सम्बंध ज्ञात होताहै यथा अध्वर्युका (यजुर्वेदके जाननेवालेका) यज्ञविधिके मंत्रोंका सुनाना व्यवहित (आडमें प्राप्त) होता (हवन करनेवाले) का लिंगहै। पूर्णमासीके चन्द्रमाका उदय होना समुद्रकी वृद्धि व कुमुदके

प्रज्वलित होनेका लिंग है ऐसाही औरभी जानना चाहिये। सब प्रकारका लैंगिक ज्ञान अर्थात् अनुमान इसका यह है ऐसे सम्बंधमात्रके ज्ञानसे सूत्रकारके वचनसे सिद्ध होताहै वा सिद्ध है। वह लैंगिक ज्ञान दोविधका होताहै दृष्ट व सामान्यतोदृष्ट जो ज्ञात पदार्थ व साध्य पदार्थके जातिमें कुछ भेद न होनेमें अनुमान होता है वह अदृष्ट है यथा यह जानकर कि सास्ना (गलकम्बल) केवल गौमें होताहै देशान्तरमें (अन्य देशमें) सास्नामात्र देखनेसे यह गौ है यह ज्ञान होताहै व प्रसिद्ध (ज्ञातपदार्थ) व सायधर्मे अत्यन्त जाति भेद होनेमें जो लिंगसे (लिंगद्वारा) अनुमेय धर्मके सामान्य (जाति) की अनुवृत्तिसे (वैसाही होनेके ज्ञानसे) अनुमान होताहै वह सामान्यतोदृष्ट है। यथा कर्षक (खेत करनेवाला) वनिक (वनिया) व राजाके पुत्रोंकी वृत्तिकी सफलता जानकर वा देखकर यह अनुमान होताहै कि ऐसेही वर्णाश्रमियोंके कर्म व अनुष्ठानके फलकी प्राप्ति होगी अर्थात् दृष्ट (प्रत्यक्ष) प्रयोजनको छेकर वा मानकर धर्ममें प्रवर्तमानोंके फलका अनुमान होताहै। अनुमानमें लिंगदर्शन (चिह्नका देखना वा जानना) प्रमाण है अग्निका ज्ञान प्रमिति है अथवा अग्निका ज्ञानही प्रमाण है व अग्निमें गुण व दोषोंका माध्यस्थ दर्शन (यथार्थ भेदरूपसे देखना) प्रमिति है जो प्रमाण अपने निश्चित (पूर्वनिश्चित) अर्थमें होताहै वह अनुमान है समान विधि होनेसे (अनुमानहीके समान विधि होनेसे) शब्दआदिकोंका भी अनुमानहीमें अन्तर्भावहै अर्थात् शब्दआदिहीके अन्तर्गत है वा अन्तर्गत समझना चाहिये जिसने व्याप्तिको ग्रहण किया है वा जाना है। ऐसे अनुमान करनेवालेको लिंग देखनेसे व प्रसिद्धि (व्याप्ति) के अनुस्मरण (पूर्वके समान स्मरण) से अतीन्द्रिय (अप्रत्यक्ष) पदार्थमें अनुमान होताहै ऐसही शब्दआदि[illegible] मान होताहै। श्रुतिस्मृतिरूप होनेपरभी

की अपेक्षायुक्त होनेसे जैसा कि सूत्रकारने कहाहै कि उसके (ईश्वरके) वचन होनेसे आम्नाय (वेद) का प्रामाण्य है ऐसे वचनसे अनुमानही है और लिंगसे शब्द अनित्य है अर्थात् जैसे कि सूत्रकारने यह कहाहै कि बुद्धिपूर्वक वाक्यकी रचना वेदमें है वा ज्ञात होतीहै बुद्धिपूर्वक दानका देना आदि वेदमें कहाहै ऐसे उक्त अनित्य होनेके लिंग (चिह्न वा लक्षण) से शब्द अनित्य है जिस पुरुषका स्वभाव वा आचरण प्रसिद्ध है उसको चेष्टासे (चेष्टा देखकर) जान लेना अर्थात् निश्चय करलेना यहभी अनुमानही है गौके समान गवय (नीलगाव) होता है ऐसा आप्तवाक्यसे अप्रसिद्ध (अज्ञात) गवयके प्रतिपादन होनेसे जो उपमान प्रमाण होताहै वह आप्तवचनही है (आप्तवचनरूपही है) दर्शनार्थापत्ति (देखनेसे अर्थापत्ति होना) केवल विरोधी अनुमान है श्रुतार्थापत्तिभी (सुननेसे अर्थापत्ति होनाभी) शब्दके सुननेसे अनुमित अनुमान है अर्थात् अनुमान किये शब्दके अर्थसे उसके सम्बंध स्मरणसे अनुमान करना है। संभवभी एक दूसरेके विना होनेवाला न होनेसे सम्बंधसे ज्ञान होनेसे अनुमानही है। अभावभी अनुमानहीहै यथा उत्पन्न कार्य कारणके होनेका लिंगहै ऐसेही कार्यका न होना कारणके अभावका (न० होनेका) लिंग ऐतिह्य यथार्थरूप अन्यथाभावरहित आप्तोपदेशही है। यह अपनी बुद्धिसे अपने आत्मामें अपनेअर्थ अनुमान है और पांच अवयवसंयुक्त वाक्यसे अपने निश्चित अर्थका प्रतिपादन करना परार्थ (परके लिये) अनुमान है अर्थात् परको उस अर्थको जनानेके लिये अनुमान है संशयित (संशययुक्त ज्ञान) व विपरीत यह दोनों जिनको होतेहैं उनके लिये पांच अवयवसंयुक्तही वाक्यसे अपने निश्चित अर्थको प्रतिपादन करना परार्थअनुमान समझना चाहिये। प्रतिज्ञा, अपदेश, निदर्शन, अनुसन्धान व प्रत्याम्नाय यह पांच अवयव हैं। उनमेंसे अनुमेय पदार्थका विरोधरहित कथन प्रतिज्ञा है अर्थात् जिस धर्मके प्रतिपादनकी इच्छा कीगईहै

अर्थात् जिस धर्मके प्रतिपादनका मनोरथ है उस धर्मविशिष्ट (उस विशेषधर्मसंयुक्त) धर्मीका हेतु विषयके प्रतिपादनके लिये उपदेशमात्र करना प्रतिज्ञा है यथा यह कहना वा उपदेश करना कि वायु द्रव्य है। विरोधरहित (यथार्थ धर्म) ग्रहण करनेसे जो प्रत्यक्ष, अनुमान, वेद व अपने शास्त्र व अपने वचनके विरोधी हैं वह निरस्त होतेहैं अर्थात् हारजाते हैं यथा ऐसा कहना कि अग्नि उष्ण (गरम) नहीं है प्रत्यक्ष विरोधी (प्रत्यक्षके विरुद्ध) है। मेघ आकाश है यह अनुमान विरोधी है ब्राह्मणको सुरा (मदिरा) पान करना चाहिये यह आगम (वेद) विरोधी है। उत्पत्तिसे पहिले कार्य सत् (विद्यमान) है वैशेषिक शास्त्रवालेका ऐसा कहना स्वशास्त्रविरोधीहै (अपने शास्त्रके विरुद्ध है) शब्द अर्थका प्रत्यायक (जनानेवाला) नहीं है यह स्ववचन विरोधी है (अपने वचनका विरोधी है) इन विरोधोंसे रहित धर्मविशिष्ट धर्मीका कहना प्रतिज्ञा है जिससे उक्त विरोधयुक्त कहनेवाले विरोधी निरस्त होते हैं। लिंग वचन अपदेश (हेतु) है अर्थात् जो अनुमेयके साथ रहता है और उसके समानजातीय पदार्थमें एक देशमें या सब देशमें सामान्यसे ज्ञात होता है व उसके विपरीतमें कहीं नहीं होता वह लिंग है यह लिंगका लक्षण कहा गया है इस लिंगका वचन (कहना) अपदेश (हेतु) है अर्थात् जिस वचनसे वह लिंग वाच्य होता है वह अपदेश है यथा वायुके द्रव्य होनेके साधनमें यह कहना क्रियावान होनेसे वा गुणवान होनेसे ऐसा माननेमें जो अनुमेयमें क्रियावत्त्व व गुणवत्त्व है इन भेदोंमेंसे गुणवत्त्व (गुणवान होना) तो उसके सब समानजातीय पदार्थोंमें अर्थात् सब द्रव्योंमें हैं क्रियावत्त्व (क्रियावान होना) सबमें नहीं है अर्थात् किसी द्रव्यमें है व किसीमें नहींहै यह दोनों इस वायुद्रव्यके साथही हैं इससे वायुमें दोनोंका होना रूप लिंगका कहना अपदेश है यह सिद्ध है इससे वा ऐसही जो अप्रसिद्ध अर्थात् जो धर्म सिद्ध या ज्ञात नहीं है उसका जो विरुद्ध

न्तके साथ दृष्ट (देखे या जानेहुये) लिंग सामान्यको अनुमे
मिलाना अनुसन्धान है अर्थात् निदर्शनमें जो लिंग सामान्य
पलब्ध शक्तिक है अर्थात् शक्तिको नहीं प्राप्त हुवा अनुमेयके
मात्रसे (धर्ममात्रके साथ) कहा गया है वह साध्यसाम
(साध्यके सामान्य.) के साथ ज्ञात हुवा अनुमेयमें
वचनसे अनुसन्धान किया जाता है (मिलान किया जाता
वह अनुसन्धान है. अर्थात् उसको अनुसंधान कहते हैं
यह कहना कि तथा (तैसही) यह वायु क्रियावान है
अनुमेयके अभावमें उसका न होना जानकर ऐसा कहना
वैसा वायु कियारहित नहीं है अनुसन्धान है। अनिश्चित (नि
न किये गये) अनुमेयत्वसे (अनुमेय होनेमात्रसे) कहे गयेमें
निश्चय करानेके लिये फिर प्रतिज्ञा वचनको कहना प्रत्याम्ना
अर्थात निश्चयरहित प्रतिपाद्यभावसे कहेहुयेमें हेतुआदि
यवोंसे गृहीत (ग्रहणकी गई) शक्तियोंका परको निश्चय ठहरा
लिये समाप्तवाले वाक्यके साथ प्रतिज्ञाको फिर कहना प्रत्या
है जैसे यह कहना कि तिससे यह द्रव्यही है । विना इस वा
हुये पूर्वके सब अवयव या कुछ अवयव अपने अर्थको सिद्ध
करते अर्थात् पूर्व अवयवोंसे कुछ फल प्राप्त नहीं होता। जो
कहा जाय कि गम्यमान (प्राप्त होते हुये) अर्थसे हो जायगा
अतिप्रसंगसे (जितना प्राप्त होना इष्ट है उससे अधिकमें प्राप्त
जानेसे) ऐसा नहीं होसकता। प्रतिज्ञाके पश्चात् हेतुमात्रही क
चाहिये फिर विद्वानोंको अन्वयव्यतिरेकसे (हेतुके साथ यो
भेद वा मेल व विरोध होनेसे) अर्थकी सिद्धि होजायगी ति
इसीमें (प्रत्याम्नायहीमें) सर्वथा अर्थकी समाप्ति होतीहै अर्थात् अ
माय पूर्ण होता है यथा शब्द अनित्य है यह कहनेसे निश्चयर
अनित्यत्वमात्रविशिष्ट शब्द कहा जाता है। प्रयत्नके पश्चात् उ
होनेसे इस कथनसे साधन धर्ममात्र कहाजाताहै लोकमें जो प्रय
पश्चात् होता है अर्थात् प्रयत्नसे उत्पन्न होताहै वह अनित्य होत

विधि है कैसे है उसका दृष्टांत यह जैसे करनेकी इच्छा किये गये यज्ञ, अध्ययन (पठन), दान, कृषीआदिमें जब कोई हाँथको उत्क्षेपण करने (ऊपर फेंकने) अर्थात् ऊपर लेजाने वा अवक्षेपण करने (नीचे फेंकने) अर्थात् नीचे ले जाने वा करनेकी इच्छा करता है तब हाँथवालेके आत्मप्रदेशमें (आत्माके अंशमें) प्रयत्न उत्पन्न होता है उस प्रयत्न व गुरुत्वकी अपेक्षा रखते वा करते अर्थात् अपेक्षासंयुक्त असमवायिकारण आत्मा व हाँथके संयोगसे हाँथमें कर्म होता है व हाँथवालेके सब शरीरके अवयवों पादआदिकोंमें व शरीरमेंभी होता है उसके (शरीरके) साथ सम्बन्धोंमें (सम्बन्ध युक्त अवयवोंमें) भी कैसे होता है उसका विवरण यह है कि जब हाँथसे मुशल (मूसर)को लेकर यह इच्छा करता है कि मैं हाँथसे मुशलको ऊपरको फेंकूं अर्थात् ऊपरको उठाऊं वा लेजाऊं उससे अनन्तर (उसके पश्चात्) प्रयत्न होता है उसकी अपेक्षायुक्त आत्मा व हाँथके संयोगसे जिस कालमें हाँथमें उत्क्षेपण कर्म उत्पन्न होता है उसी कालमें उस प्रयत्नकी अपेक्षा करता हुआ वा अपेक्षासंयुक्त हाँथ व मुशलके संयोगसे मुशलमेंभी कर्म होता है उसके पश्चात् दूर उत्क्षिप्त (उत्क्षेपण किये हुये) मुशलमें उत्क्षेपणकी इच्छा निवृत्त होती है अवक्षेपणकी इच्छा उत्पन्न होती है उसके पश्चात् प्रयत्न होता है उसको अपेक्षा करते उस प्रयत्नसंयुक्त यथोक्त(जैसे कहे गये वैसे) दो संयोगोंसे हाँथ व मुशल दोनोंमें एक साथ अवक्षेपण कर्म होते हैं उससे अन्तमें हुये मुशलके कर्मसे उलूखल (उखली वा कांडी) व मुशल दोनोंका अभिघातनामक (जो अभिघात कहाजाता है वह) संयोग होता है और वह मुशलमें प्राप्त वेगको अपेक्ष्यमाण मुशलमें अप्रत्यय (जो प्रकट ज्ञात नहीं होता ऐसा) उत्पतन कर्मको (ऊपर उठनारूप कर्मको) करता है ... ।भिघ अपेक्षायुक्त कर्म मुशलमें संस्कारको (... भक करता है उस संस्कारसे युक्त हो ... अप्रत्यय उत्पतन कर्मको करता ...

भिघातसे नष्ट होजाता है तथापि मुशल व उलूखलका संयोग कर्मका उत्पन्न करनेवाला संयोग विशेषके होनेसे उसके (वेगके कारके) आरंभ करनेमें सान्निध्यसे (सन्निधभावमें) समर्थ ता है अथवा प्राक्तनहीं (पूर्वही) का पटु (तीव्र) संस्कार भिघातसे नष्ट न होकर अवस्थित रहता है इससे संस्कारवानमें फेर संस्कार नहीं है इसमे जिसही कालमें संस्कारकी जो अपेक्षा करता है ऐसे संस्कारयुक्त अभिघातसे मुशलमें अप्रत्यय (जो प्रत्यक्ष ज्ञात नहीं होता ऐसा) उत्पतन कर्म होता है उसी कालमें उसी संस्कारको अपेक्ष्यमाण (संस्कारकी जो अपेक्षा करता है ऐसा संस्कारको प्राप्त) मुशल व हाँथके संयोगसे हाँथमेंभी अप्रत्यय उत्पतन कर्म होता है। पाणिमुक्तोंमें (हाँथ छुटेहुयोंमे) गमनकी विधि है कैसे है इसका निदर्शन यह है जैसे जब तोमर लेकर हाँथमें फेंकनेकी इच्छा उत्पन्न होती है उसके पश्चात् प्रयत्न होता है उस प्रयत्नकी जो अपेक्षा करते हैं ऐसे यथोक्त (जैसे कहे गये हैं) दोनों संयोगोंसे तोमर व हाँथ दोनोंमें एकसाथ आकर्षण कर्म होते हैं। हाँथ फैलानेपर तोमरके आकर्षणके अर्थ जो प्रयत्न होता है वह निवृत्त होजाता है उसके पश्चात् तिरछा, ऊँचे दूर अथवा निकट फेकूं ऐसी इच्छा उत्पन्न होती है उससे अनन्तर (उसके पश्चात्) उसके अनुरूप (अनुसार वा अनुकूल) प्रयत्न होता है उसके होने-पर उसकी जो अपेक्षा करता है ऐसा नोदन (प्रेरण) नामक तोमर व हाँथका संयोग होता है। उस यथोक्त (जैसा कहागया है वैसे) नोदननामक संयोगसे नोदनकी जो अपेक्षा करता है ऐसा कर्म तोमरमें उत्पन्न होता है व उसी कालमें संस्कारको आरंभ करता है उससे उसके पश्चात् संस्कार व नोदन दोनोंसे जबतक हाँथ व तोमरका विभाग होता है तबतक कर्म होते हैं उसके पश्चात् विभा-गसे ... निवृत्त होनेमें संस्कारसे ऊंचे तिरछे या निकट प्रयत्नके ... तु जैसा प्रयत्न होता है उसके अनुसार गिरनेतक ... तथा छोड़गये यंत्रोंमें गमन विधि है कैसे है इसका